नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 4 अंक 8
सितम्बर 2002 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

दूसरे श्रम आयोग की रिपोर्ट जारी

मालिकों के हाथ में चाबुक और मज़दूरों को झुनझुना

(सम्पादकीय)

श्रमिकों की दशा में सुधार की लफ्फाजी करते हुए दूसरे श्रम आयोग ने भूमण्डलीकरण की वेदी पर मज़दूरों की बलि चढ़ा देने की सिफारिश कर दी है। पिछले सात सितम्बर को जारी रिपोर्ट में आयोग ने मालिकों को छंटनी-तालाबन्दी की खुली छूट देने की वकालत की है। ठेका-प्रथा का विरोध करने की जुगाली करते हुए दरअसल उसकी वकालत की गयी है। घुमा-फिराकर मज़दूरों पर कामचोरी की तोहमत लगाते हुए छुट्टियों की संख्या कम करने और काम के घण्टों को मनमाना बढ़ाने का सुझाव दिया गया है। साथ ही ट्रेड यूनियन अधिकारों को असल में हड़प लेने की पुरजोर सिफारिश भी की गयी है। थोड़े में कहें तो यह कि मज़दूरों के हाथ में कुछ झुनझुने पकड़ाकर पूंजीपतियों के हाथ में चाबुक पकड़ा दिया गया है। अब यह चाबुक फटकारते हुए मालिक लोग गन्ने की तरह मज़दूरों को पेरेंगे और सारा खून-पसीना निचोड़ लेने के बाद सड़कों पर मरने के लिए फेंक देंगे।

श्रम आयोग की इस रिपोर्ट के बारे में तमाम मज़दूर संगठन पहले से जो आशंकाएं जाहिर कर रहे थे वे बिल्कुल सही साबित हुई हैं। श्रम कानूनों में "सुधार" करने, "लचीला बनाने" जैसे मनमोहक जुमलों की आड़ में सरकार मज़दूरों के अब तक हासिल अधिकारों पर कुल्हाड़ा गिराने की जो तैयारी कर रही थी, आयोग की रिपोर्ट ने उसे हरी झण्डी दिखा दी है। 1751 पेजी इस भारी-भरकम रिपोर्ट को 28-29 सितम्बर को भारतीय श्रम सम्मेलन (इण्डियन लेबर कांफ्रेंस – जिसमें मज़दूरों, पूंजीपतियों और सरकार के प्रतिनिधि बैठते हैं) में विचार के लिए रखा जायेगा। उम्मीद है कि केन्द्रीय मज़दूर संघों के कुछ अगर-मगर के मद्देनज़र इक्का-दुक्का रियायतों का ऐलान करते हुए रिपोर्ट को पास कर दिया जायेगा। फिर सरकार इसके आधार पर कानून बनाने के लिए संसद के अगले शीतकालीन सत्र में विधेयक पेश कर देगी।

छंटनी, ले आफ, लाक आउट की पूरी छूट

आयोग ने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 5(बी) के प्रावधानों को "उद्योग जगत की बदलती जरूरतों" के मद्देनजर पुराना बताते हुए तालाबन्दी के लिए मज़दूरों के हाथ खुले कर देने की सिफारिश की है। उसका सुझाव है कि ऐसे संस्थानों में, जहां 300 से अधिक परमानेण्ट मज़दूर काम करते हैं, तालाबन्दी करते समय मालिकों (सेवायोजकों) को 90 दिन पहले सरकार के पास अनुमति के लिए लिखना होगा। लेकिन अगर अर्जी भेजने के 60 दिन के भीतर सरकार की ओर से कोई जवाब नहीं आया तो इसे अपने आप अनुमति मानी जायेगी। धारा 5 (बी) के अनुसार 100 से अधिक नियमित मज़दूरों वाली इकाइयों में लाकआउट तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि सरकार से मंजूरी न मिल जाये। यहां यह तथ्य गौरतलब है कि देश में 80 प्रतिशत उपक्रम ऐसे हैं जहां 300 से कम परमानेण्ट मज़दूर काम करते हैं। यानी अगर इस सिफारिश पर अमल हुआ तो 80 प्रतिशत उपक्रमों में लाक आउट के लिए सरकार को नोटिस देने की भी कोई जरूरत नहीं रहेगी। बाकी 20 प्रतिशत उपक्रम बचेंगे जिनमें व्यवहारतः सिर्फ नोटिस देने भर से काम चल जायेगा क्योंकि ऐसी नोटिसों पर "उद्योग जगत की बदलती जरूरतों" के मद्देनजर या तो सीधे मंजूरी मिल जायेगी या सरकार कोई जवाब न देकर लाक आउट का रास्ता साफ कर देगी।

इसके साथ ही, आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि किसी उपक्रम में चाहे जितने मज़दूर काम करते हों छंटनी या ले आफ के लिए सरकार से किसी तरह की मंजूरी की जरूरत नहीं होगी। सिर्फ मज़दूरों को साठ दिन पहले नोटिस देनी होगी।

छंटनी का मुआवजा देने के लिए आयोग ने जो पैमाना बनाया है उसका अमली रूप यह होगा कि मज़दूरों को बेहद मामूली राशि देकर मालिक अपना पिण्ड छुड़ा लेंगे। तय किये गये मानदण्ड के अनुसार लाभ कमाने वाले उपक्रमों में छंटनीशुदा मज़दूरों को नौकरी के हर साल के 60 दिन की मज़दूरी जोड़कर देनी होगी। लेकिन अगर उपक्रम घाटे में चल रहा है तो नौकरी के हर साल के केवल 45 दिन की मज़दूरी देकर और अगर तीन साल से कोई उपक्रम घाटे में चल रहा है तो नौकरी के हर साल के केवल 30 दिन की मज़दूरी देकर मालिक हाथ झाड़ लेंगे। इतना ही नहीं, ऐसे उपक्रमों में जहां दस से कम मज़दूर काम करते हों, ऊपर बताई गई तीनों कैटेगरी में सिर्फ आधी राशि देकर मालिक अपना पल्लू झाड़ लेंगे। यह कौन नहीं जानता कि लाभ में चलने वाले उपक्रमों को भी घाटे में दिखाने में

(पेज 6 पर जारी)

श्रम आयोग की मुख्य बदमाशियां

- मज़दूरों की छंटनी व ले आफ की खुली छूट।
- 300 से कम मज़दूरों वाली इकाइयों में लाक आउट की खुली छूट।
  300 से अधिक होने पर सरकार से इजाजत की सिर्फ खानापूरी।
- ठेके पर काम लेने की पूरी छूट।
- छुट्टियों में कटौती, काम के घण्टे मालिकों की मर्जी पर।
- ट्रेड यूनियन अधिकारों में व्यापक कटौती।
- असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए झुनझुना थमाया।
- वेतन बोर्डो की जरूरत नहीं।
- सारे श्रम कानूनों को मिलाकर एक कानून।
- छोटे मालिकों को अपना कानून बनाने की छूट।

हिन्दू साम्प्रदायिक फासिस्ट ताकतों को इतिहास का सबक सिखाना होगा!

इस बेबसी को अब बस कहना होगा!

(विशेष संवाददाता)

दिल्ली। संघ परिवार का नया "नायक" नरेन्द्र मोदी गुजरात के मुसलमानों के खून का तिलक लगाये अपनी "गौरव यात्रा" पर निकल चुका है। यह गौरव यात्रा कौन सा रौरव नर्क रचने वाली है इसका अनुमान लगाने से भी सिहरन होती है। अपनी समूची यात्रा के दौरान हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद का यह नाग अपना फन उठाये लगातार फुफकार रहा है – 'गुजरात के राहत शिविर बच्चे पैदा करने वाले कारखाने हैं', 'हम पांच हमारे पच्चीस का नारा लगाने वालों को सबक सिखाना होगा' वगैरह-वगैरह। ... और अफसोस है कि जमाना सुन रहा है, चुपचाप! समाज के जिस संवेदनशील हिस्से में इन्सानियत के इस हश्र पर अन्दर नफरत और गुस्सा उफन भी रहा है, वह फिलहाल बेबस दिख रहा है। धर्मनिरपेक्ष-प्रगतिशील-जनवादी कही जाने वाली संसदमार्गी सियासी ताकतें अखबारी बयानबाजियों, कुछेक उबाऊ रस्मी कवायदों और नपुंसक चुनावी मोर्चा बनाने से ज्यादा कुछ कर नहीं सकतीं और अपनी ही विडम्बनाओं में उलझी क्रान्तिकारी ताकतें भी फिलहाल कुछ कारगर कर नहीं पा रही हैं।

जब इतिहास के रथ के पहियों को खून से लथपथ कर आगे खींचने वाली ताकतें कमजोर पड़ती हैं तो इतिहास को पीछे धकेलने वालों की रथयात्राएं आयोजित होती हैं। इतिहास की यही विडम्बना है कि एक कायर घिनौना फासिस्ट यह हुंकार भर रहा है कि गुजरात को पूरे देश में दुहराया जायेगा। यह बिल्कुल बढ़ा-चढ़ाकर कही गयी बात नहीं है। "राष्ट्रीय" मीडिया के जरिये विश्व हिन्दू परिषद के कार्यकारी अध्यक्ष अशोक सिंघल के अमृतसर की एक मीटिंग में दिये बयान को लोग पढ़-सुन चुके हैं। सिंघल ने बेहया बहादुरी के साथ यह स्वीकार किया कि गोधरा का बदला उतारने के लिए गुजरात में जो हुआ उस पर उसे गर्व है।

(पेज 10 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

1-वामा इण्डस्ट्रीज ..- पृ. 3
2- ईस्टर मज़दूरों पर निष्कासन की कार्रवाई - पृ. 4
3-भगतसिंह पर विशेष सामग्री - पृ. 5
4-कविता-'कैथर कला की औरतें' - पृ. 8
5-तनख्वाह देने के लिए पैसों का रोना... - पृ. 9
6- मक्सिम गोर्की की कहानी 'कोलुशा' - पृ. 11
7- नाउम्मीदी के अंधेरे में नए इंकलाब के... - पृ. 12

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मज़दूरी हड़पकर भागे ठेकेदार को कहां ढूंढ़ें?

मैं शाही एक्सपोर्ट, नोएडा में लगभग महीने दिन पहले तक ठेके के तहत हेल्पर का काम कर रहा था। काम के महीने दिन बीतने के बाद जब मैंने ठेकेदार से पैसा मांगा तो उसने कहा कि 20 तारीख को पैसा मिलेगा। ठेकेदार का जवाब सुनकर मैं दुविधा में पड़ गया क्योंकि जिस मकान में, मैं रहता हूं उसका महीना 16 को पूरा होता है और अगर एक दिन आगे चला जाता है तो मकान मालिक गालियों से ही नवाजता है और कहता है कि 'तणे क्या धर्मशाला समझ रखो हो' जा चल यहां से। कहीं से भी पैसा लेकर आ, नहीं तो शाम तक मैं ताला लगा दूंगा कमरे में। फिर मैंने किसी तरह इन्तजाम करके मकान मालिक का किराया और राशन वाले को आधा पैसा दिया जिससे भोजन चलता रहे और सोने की जगह मिल जाये। फिर बीस तारीख को पैसा दे ही देगा तो कर्ज चुकता कर दूंगा।

बीस तारीख को गेट पर पहुंचते ही हमें रोक दिया गया। तबतक धीरे-धीरे सभी मज़दूर जो ठेकेदारी के तहत काम करते थे आ गये। तीस आपरेटर, नौ चेकर, बीस हेल्पर समेत कुल हमलोग पैंसठ लोग थे जिसमें 23 महिला श्रमिक थीं। बाकी सभी मज़दूर अन्दर जा चुके थे, हमलोग आपस में सांय-फुस कर रहे थे कि क्यों हमलोगों को अन्दर नहीं लिया गया। कहीं ठेकेदार भाग तो नहीं गया। तबतक अन्दर से एक मज़दूर किसी काम से बाहर जा रहा था, हमलोगों को देखकर पूछा कि ठेकेदारी में काम करते हो। हमलोगों ने उसकी तरफ बढ़ते हुए हां-हां किया उसने तपाक से कहा तुम्हारा ठेकेदार भाग गया। उस मज़दूर की बात सुनकर ऐसा लगा कि हमलोगों को काटो तो खून नहीं। क्योंकि डेढ़ महीने तक पैंसठ लोगों में से अगर महिला श्रमिकों को निकाल दिया जाए तो कोई भी ऐसा मज़दूर नहीं था जिसने पर डे, नाइट न लगाया हो। कुल मिलाकर हमलोगों ने अबतक लगभग सवा दो लाख रूपये का काम किया था। अब क्या किया जाये यही सोच ही रहे थे कि गेट से तीन चार गार्ड बाहर निकलकर आये हमलोगों को गेट से खदेड़ने लगे।

जब हमने पैसा मांगा तो गार्ड ने कहा 'जाओ ठेकेदार को पकड़ो।'

'हमलोग क्या जानते हैं ठेकेदार कहां रहता है' – हम सबने मिलकर कहा, कि हमलोगों ने यहां काम किया है इसलिए तनख्वाह हम यहीं से लेंगे। तो गार्ड ने तपाक से पूछा 'कोई सबूत है'। हमलोग एक दूसरे का चेहरा देखने लगे क्योंकि कोई सबूत नहीं था। यहां तक नाइट लगा के जाने के बाद गेट पास तक नहीं मिलता था। बहुत देर तक हमलोग सबूत की सोच में लगे रहे कि क्या सबूत हो सकता है। अन्त-अन्त तक महिला श्रमिकों ने अपना पर्स टटोला और हमलोगों ने बटुआ। कहीं कोई सबूत नहीं। यहां तक कि हम ये भी नहीं कह सकते कि हमने यहां काम किया है और इसका कोई सबूत है हमारे पास। साथियों, आज तक मैं ये सोचता था कि क्या जरूरत है एकजुटता की, लेकिन अब लगने लगा है कि बिना एकजुट हुए इन लुटेरों से लड़ा नहीं जा सकता।

-सलीम, नोएडा

अन्याय,
असमानता,
शोषण-दमन के विरुद्ध

विद्रोह न्यायसंगत है!

विद्रोह करना सीखो!

विद्रोह करो!!

विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ो !!!

सड़कों पर भूखों मरने की आज़ादी

नोएडा आने से पहले मैं बनारस में एम्ब्रायडरी का काम कर रहा था। वहां हालत अच्छी नहीं थी, और काम में भी इधर वर्षों से मंदी थी। महीने में यही कोई दस पन्द्रह दिन ही काम मिल पाता था मशीनों में कोई खराबी आने पर खुद ही उसे बनवाने ले जाना पड़ता था। जिससे काम का समय बरबाद होता था। काम कहने पर हमेशा अर्जेन्ट का हौवा सर पर सवार रहता था। वैसे मजदूरी तो पीस रेट थी, मगर मलिक जरी, रेशम,बिजली और मशीन रिपेयरिंग तथा गद्दी के कमीशनखोरों का परसेंट देने के बाद जो पैसा मीटर पीछे बचता था, उसमें से आधा हमें देता वह भी एहसान और ईमानदारी की कसम खाते हुए।

इस काम में मंदी दसियों सालों से स्थायी समस्या की तरह लगी है। बस कोई न कोई घटना बहाना बन जाती है जैसे चुनाव, दंगा,अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की कोई भी उठा पटक। इन्हीं सब आफतों से तंग मैं नोएडा की तरफ आया, क्योंकि हम मज़दूर जब काम की परिस्थितियों से तंग आते तो दिल्ली,लुधियाना का सपना देखते। इन जगहों के बारे में हमने सुन रखा था कि यहाँ कढ़ाई का कम खूब चलता है। यह उम्मीद हम इसलिए पाल बैठे थे कि बनारस में सन् 80-81 में आज की तरह ही भयानक मंदी आयी थी तब बहुत से लोग अपना बर्तन-भांडा बेच कर दिल्ली-लुधियाना आये और किसी तरह उनके परिवार का चूल्हा जलने लगा।

इन्हीं बातों को सुनकर एक उम्मीद लेकर मैं यहां नोएडा आया कि मैं यहां कमा कर किसी तरह अपने परिवार का पेट पाल लूँगा। मगर यहां आने पर मेरा यह छोटा-सा सपना चूर हो गया। आज मैं महीनों से अपना काम ढूढ़ रहा हूं। यहां आकर मालूम हुआ कि अभी तक हम बैल गाड़ियों के जमाने में जी रहे थे। दुनिया तो कम्प्यूटर एम्ब्रायडरी के जमाने में पहुँच चुकी है। इतनी मेहनत से सीखा हुनर यहां आकर बेकार हो गया। ऐसा भी नहीं है कि यहां मेरे हुनर का काम न होता हो, गांधी नगर, नोएडा, सीलमपुर आदि इलाकों में मेरा सीखा हुआ काम हो रहा है मगर यहां भी मंदी है। साथ में लाया पैसा तेजी से खत्म होता जा रहा है। बहुत सी फैक्ट्रियों में मैंने हेल्पर का काम मांगा लेकिन वह भी नहीं मिला। एकाध सिक्योरिटी गार्ड ने व्यंग्यपूर्ण झिड़की के साथ कहा कि तेरी यह उमर हेल्परी की नहीं है। क्या इस देश में काम की दुनिया में 35 साल की उम्र सड़कों पर भूखो मरने के लिए होती है?

मैं आज अपने जीवन के इस हाल पर सोच रहा हूं और वे तमाम नौजवान भी याद आ रहे हैं जो उम्मीद लिए विभिन्न सेक्टरों में काम की तलाश में घूम रहे हैं, क्या हम ईमानदारी से काम नहीं चाहते? बेशक हम काम करना चाहते हैं। मगर काम कराने वालों को हमारी जरूरत नहीं है। उस आज़ादी के बारे में सोचता हूं जो 56 साल पहले हमारे पुरखों ने तमाम दुःख-तकलीफ से लड़कर हासिल की थी, जो आज हमारे लिए महज बेरोजगार हो सड़कों पर भूखों मरने के लिए है। हमारे लिए आज़ादी एक भद्दा मजाक बनकर रह गयी है।

अब इससे बचने के लिए हमारे पास दो रास्ते हैं। पहले रास्ते पर हम बग़ैर अपनी इच्छा से चल ही रहे हैं, यानी कि हम बेरोजगारी और भूख से किस्तों में खत्म हो रहे हैं क्यों न हम दूसरे रास्ते पर ही चल दें जैसा कि शहीदे आज़म भगत सिंह ने हमें बताया है कि "अगर कोई सरकार जनता को उसके मूलभूत अधिकारों से वंचित रखती है तो जनता का केवल यह अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य भी बन जाता है कि ऐसी सरकार को तबाह कर दे।"

एक मज़दूर, नोएडा

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

♦ शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ♦ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ♦ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ♦ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ♦ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर ♦ जनचेतना, डी 68, निरालानगर लखनऊ ♦ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 8-30) ♦ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ♦ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ ♦ विजय कुमार, 55/3, E.W.S. आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ♦ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ♦ राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली ♦ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ♦ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज-1, दिल्ली ♦ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, दिल्ली ♦ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली ♦ डी.के. सचान, एस.एच.- 272, शास्त्रीनगर गाजियाबाद ♦ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो ♦ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो.-तेघड़ा, बेगूसराय ♦ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ♦ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक जबलपुर ♦ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला-सिरसा ♦ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ♦ सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ♦ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ♦ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ♦ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ♦ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ♦ विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल

दवा के नाम पर जहर बेचते मुनाफाखोर

मुनाफाखोरों का ईमान-धरम, नैतिकता-अनैतिकता सब कुछ मुनाफा तय करता है। इन्सान की ज़िन्दगी का मोल उनके लिए उतना ही है जितना वह मुनाफा कमा सकता है। मिसाल के तौर पर जीने के लिए बुनियादी चीज दवा तक में जहर मिलाकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियां बेच रही हैं और सालाना हमारे देश से खरबों रुपयों का मुनाफा कमा रही हैं। जिन दवाओं को सारी दुनिया में जहर मानकर पाबंदी लगा दी गयी हो, उसे हमारे बाजार में चमकीली पन्नी में लपेटकर दवा के नाम पर बेचा जाता है। मुनाफे की हवस में मुनाफाखोरों को इसकी क्या परवाह कि लोग रोग से मुक्ति के नाम पर जो दवाएं खरीद रहे

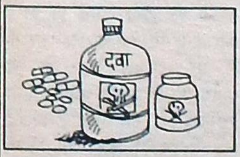

हैं उससे उलटे कई रोग और गले पड़ जायेंगे।

दवा के नाम पर जहर देकर भारत में कोई बीस हजार दवा निर्माता साठ हजार से अधिक मिलावटी और नकली दवाओं का उत्पादन कर हर साल भारत से तीस अरब की राशि चट कर जाते हैं। पूंजीवादी-साम्राज्यवादी दुनिया का चेहरा चमकाने में जुटी संस्था विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी यह कहना है कि हमारे यहां महज दो सौ किस्म की दवाएं पर्याप्त हैं जबकि बाजार में अस्सी हजार किस्म का कचरा भरा है। इन दवाओं के बारे में 'जितने का लड़का नहीं उतने का झुनझुना' वाली कहावत लागू होती है। उदाहरण के तौर पर एंपीसिलिन को ही लें। इसके छह सौ से अधिक ब्राण्ड बाज़ारों में अलग-अलग नाम से बिक रहे हैं।

भारतीय दवा उद्योग पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कब्जे में है। ये कंपनियां जहरीली दवाएं बेचने के लिए 'यूनीसेफ' का नाम भुनाने में कतई परहेज नहीं करती हैं। जर्मनी की एक नामी दवा कम्पनी ने क्लोरेफेनीकाल और स्ट्रेप्टोमाइसिन के मिश्रण से तैयार एक दवा को डायरिया का अचूक इलाज बताने के लिए 'यूनीसेफ' के प्रमाणपत्र का झूठा प्रचार किया। इससे यह समझा जा सकता है कि 'यूनीसेफ' की इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सामने क्या औकात है।

हमारे देश में इससे भी बड़ा मजाक होता है। दवाओं के उत्पादन की नीतियों का निर्धारण स्वास्थ्य मंत्रालय की जगह उद्योग मंत्रालय करता है। सीधी सी बात है कि किस दवा को बेचने से ज्यादा मुनाफा होगा उसी को उद्योग मंत्रालय या उद्योगपति बढ़ावा देता है। कहावत है न कि "कुत्ते का काम जब गधा करने लगे तो नुकसान ही होता है।" सोचा जाय कि सरकारी आंकड़े के अनुसार देश में डेढ़ करोड़ से ज्यादा टी.बी. के मरीज हैं और उपलब्ध दवा पांच लाख मरीजों के लिए भी नाकाफी हैं। दूसरी ओर, एक ही रोग की हज़ारों दवाएं बनाने की छूट है। चूंकि देश में अधिकतर लोगों को स्वच्छ पानी, आवास और स्वास्थ्य-सुविधाएं उपलब्ध नहीं इसलिए ऐसी स्थिति में पेट की गड़बड़ी यानी दस्त, आंव आदि आम रोग है। इसके लिए मेक्साफार्म, एमीक्लीन, डाडोक्वीन, इंट्राक्वेनाल, फ्लेजिल जैसी दवाएं बगैर पर्ची के ही बिकती हैं। यह जानते हुए कि इनके अंधाधुंध उपयोग से स्नायु तंत्र कमजोर होता है।

पौष्टिक आहार के नाम पर डाक्टरों द्वारा धड़ल्ले से लिखी जा रही न्याराल एच, हुराबुलोन, टिनर्जिक, ओनाबालिक्स जैसी दवाओं के इस्तेमाल से बच्चों की हड्डियों का विकास रुकने की बात कई शोधों से सिद्ध हो चुकी है। पर उच्च स्तरीय अधिकारियों-सरकार-डाक्टर की मिलीभगत से ये दवाएं धड़ल्ले से बिक रही हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भारत जैसे ग़रीब मुल्कों को अपने बेकार मालों का कूड़ाघर बना दिया है। लंबाई बढ़ाने, मोटापा घटाने या पौरुष शक्ति बढ़ाने के नाम पर हमारे चिकित्सकों द्वारा आंख बंद कर प्रयोग में लाई जा रही दवाओं की बिक्री दुनिया में बंद कर दी गई है। पूरी दुनिया के चिकित्सा-विज्ञानी इस बात से वाकिफ हैं कि एंटी बायोटिक्स तभी दी जाएं जब दूसरा कोई विकल्प न बचे, लेकिन हमारे यहां इसका उपयोग खांसी-ज़ुकाम तक में होता है। इसी तरह एनीमिया मतलब खून की कमी को दूर करने के लिए आयरन के तमाम ब्राण्ड बाजार में उपलब्ध हैं। जिससे दरअसल कोई खास फायदा नहीं होता है।

दवा के नाम पर मुनाफे का धंधा कर रही ये कम्पनियां अकेले ही, ज़िन्दा लोगों को लाश नहीं बना रही हैं बल्कि इसमें सभी पूंजीवादी मुल्कों के लुटेरों की हिस्सेदारी है। देश की मेडिकल कार्उसिल के अध्यक्ष के काले कारनामों को हाई कोर्ट ले जाने वाले चर्चित डाक्टर हरीश भल्ला का स्पष्ट मानना है कि सरकार में बैठे लोगों की मिलीभगत के चलते ही बाज़ार में दवा के नाम पर जहर बेचने की छूट मिली हुई है।

यह सब तबतक जारी रहेगा जब तक कि दुनिया में उत्पादन मुनाफे के लिए होगा। 'यूनीसेफ', 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' सिर्फ सही दवाओं को तय करने के नाम पर मुखौटा मात्र ही हैं क्योंकि ये संगठन इन्हीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लग्गू-भग्गू चलाते हैं। इसलिए किसी भी तरह का अब रोना-विलपना इस लूट की दुनिया से मुक्ति नहीं दिला सकता। रास्ता यदि कोई हो सकता है तो यह कि मुनाफे की व्यवस्था को खत्म किया जाये और इसकी जगह एक ऐसी व्यवस्था बनाने के लिए संघर्ष किया जाये जो सही मायने में रोगियों को दवा दे, जिससे समाज रोगमुक्त हो सके और जनता की गाढ़ी कमाई का मुनाफे में बदलना बंद हो सके।

-हरिकेश

वास्तविक घटनाओं पर आधारित 1905-07 की पहली रूसी क्रान्ति के समय लिखी गई और समूची दुनिया के पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक

मां

(परिकल्पना प्रकाशन की प्रस्तुति)

गोर्की की यह पुस्तक महज एक मज़दूर परिवार की नियति का चित्रण करने के बजाय समूचे सर्वहारा वर्ग के भविष्य को विलक्षण शक्ति के साथ चित्रित करती है।

मूल्य : 70 रुपये

प्राप्त करें :
जनचेतना
डी-68, निराला नगर,
लखनऊ-226020
फोन : 788932

वामा इण्डस्ट्रीज का हाल

हाड़तोड़ काम और गाली-गलौज-थप्पड़ों की बख्शीश

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा। हर साल करोड़ों के मुनाफे में चलने वाली वामा इन्डस्ट्रीज E-25,26,27 तथा F ब्लाक में दो कम्पनियों सहित Sec-11, नोएडा में चल रही है। इस फैक्ट्री में बारे में किसी भी गारमेण्ट कम्पनी में काम करने वाले मज़दूर से जाना जा सकता है। वह इसलिए नहीं कि इस कम्पनी ने मज़दूरों को काफी सुविधाएं दे रखी हैं बल्कि इसलिए कि इस कम्पनी द्वारा प्रताड़ित किया जाना पूरे नोएडा के गारमेण्ट मज़दूरों के लिए चर्चा का विषय है।

इन कम्पनियों द्वारा शोषण तो हो ही रहा है साथ ही साथ बख्शीश के नाम पर गाली-गलौज, मार-पीट मिल रहा है। 20 अगस्त '02 को दोपहर एक बजे के लंच पीरियड में शाही एक्सपोर्ट E-10, सेक्टर-11 के कोने पर खड़े मज़दूरों से इस संवाददाता द्वारा यह पूछने पर कि वामा इन्डस्ट्रीज में सभी मज़दूरों को श्रम सुविधाएं मिल रही हैं तो मज़दूरों ने व्यंग्य मिश्रित भाव से हंसते हुए कहा, कौन सी सुविधा, श्रम सुविधा? ये पूछिए कि सुबह फैक्ट्री में घुसने के बाद रात निकलने से पहले तक कितनी सौ गालियां और कितने थप्पड़ खाने पड़ते हैं, जो इसके बिना निकल जाता है उसी को श्रम सुविधा मान लेता है।

नाम न छापने की शर्त पर मज़दूरों ने काफी विस्तार से फैक्ट्री की काम की परिस्थितियों, सुविधाओं के बारे में बताया। उसी दिन घटी एक घटना से मज़दूरों ने बताना शुरू किया। कहने लगे आज ही सुबह नौ बजे की बात है। गार्ड हमलोगों की चेकिंग कर रहा था, तब तक जी.एम.साहब आ गये। उन्होंने दो बार हार्न बजाया तीसरे पर गार्ड ने पहुंचकर गेट खोला, जी.एम.साहब गाड़ी को फैक्ट्री में नहीं ले गये बल्कि गाड़ी से गेट पर उतरकर गार्ड को तीन-चार थप्पड़ लगाकर गाली देते हुए गाड़ी में बैठकर अंदर चले गये। तभी बीच में दूसरे मज़दूर ने तफरीह लेते हुए कहा 'तुम बिल्कुल वही के वही रह गये' वो तो अभी रियाज बना रहे थे, दंगल तो अंदर होगा, इस पर सभी मज़दूर हंस पड़े।

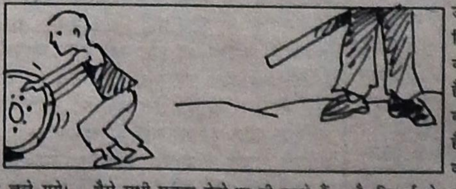

यह पूछने पर कि वामा इण्डस्ट्रीज की सेक्टर-11 में कितनी कम्पनियां हैं, और कितने मज़दूर हैं तो मज़दूरों ने बताया कि, देखिये कुल पांच फैक्ट्रियां हैं लगभग एक हजार मज़दूर काम करते हैं। वामा इण्डस्ट्रीज और मीरा के नाम से ये कम्पनियां चलती हैं। सभी कम्पनियों को मिलाकर लगभग 30-40 परमानेन्ट मज़दूर होंगे बाकी सभी ठेके पर काम करते हैं। इसमें होज़री और काटन दोनों तरह के कपड़े तैयार होते हैं। यहां पर ठेकेदार रखा गया है लेकिन सारा काम कम्पनी खुद ही कराती है। चूंकि ठेकेदार इसलिए रखा है जिससे कम्पनी किसी भी तरह के श्रमिक मामले से बची रहे। काम वैसे सभी मज़दूर ठेके पर ही करते हैं लेकिन कुछ मज़दूर ठेकेदार के कहे जाते हैं और कुछ कम्पनी की तरफ से। काम कराने का कम्पनी का तरीका यह है कि यदि आप 5 मिनट लेट आते हैं तो एक घंटे का पैसा कटता है, दो-चार थप्पड़ अलग से। काम के दौरान जल्दी पेशाब करने या पानी पीने की छुट्टी नहीं मिलती है।

मज़दूरों ने बताया कि पेशाब-पानी के लिए रेड-लाइट क्रासिंग है। होता यह है कि जहां हमलोग काम करते हैं उसके निकलने के गेट पर हरी-लाल बत्तियां लगी हुई हैं। जब कोई पेशाब-पानी के लिए जायेगा तो वह बत्ती लाल कर देता है, दूसरा तब तक नहीं जा सकता, जब तक पहला नहीं आ जाता है। यदि कोई बिना हरी बत्ती के क्रासिंग पार कर जाता है, तो उसका हाफ डे का पैसा कट जाता है, या नौकरी से भी निकाल दिया जाता है। बाकी मुफ्त सुविधा गाली-गलौज की उपलब्ध ही है। अगर किसी की तबियत काम के दौरान खराब हो जाती है तो बिना गेट पास के बाहर कर दिया जाता है, जिससे कम्पनी की कोई जिम्मेदारी नहीं होती है। सिलाई के कारीगर डेली-वेजेज पर काम करते हैं, यदि कम्पनी में काम है और किसी वजह से वह कम्पनी नहीं गया तो गेट पर ही दो-चार गाली देकर वापस कर दिया जाता है। चार-पांच दिन काम करने का कोई पैसा नहीं मिलता है।

अब जहां तक तनख्वाह का सवाल है तो वह 15-20-25 तारीख तक मिलता है। यहां पर हेल्पर मतलब धागा कटिंग, पैकिंग, माल ढोने वाले की तनख्वाह चौदह सौ रुपया है वो भी रविवार के साथ। चेकर, प्रेस मैन आदि को सोलह सौ रुपया मिलता है। साथ ही साथ ज़्यादातर मज़दूर ऐसे हैं जो काम करते हैं चेकर, प्रेसमैन आदि का परन्तु पैसा हेल्पर का मिलता है। सिलाई कारीगरों की दिहाड़ी अस्सी से सौ रुपये तक मिलती है।

मज़दूरों ने बताया कि सुविधाओं के तौर पर आठ घंटे के पूरे काल में कोई टी-लंच नहीं होता है, कैन्टीन नहीं है। कोई डाक्टर नहीं बैठता। एन्ट्री या आउट के समय कोई दस्तखत या कार्ड पंच नहीं होता है।

मज़दूरों से यह पूछने पर कि आप लोग इसके खिलाफ एकजुट होकर विरोध क्यों नहीं करते तो उन्होंने कहा कि देखिये, कहां विरोध लेकर जायें। पुलिस, कोर्ट, सरकार सब इन्हीं की है। अब आप ही बताइये कि हम कहां जायें। फिर कुछ सोचते हुए बोला – अब तो एक ही रास्ता है कि सब मज़दूर, ग़रीब, मेहनतकश एकजुट होकर इन लुटेरों के खिलाफ लड़ें तभी कोई हल निकलेगा।

तब तक फैक्ट्रियों के पांच मिनट पहले वाले हार्न बज गये। मज़दूरों से राम-राम हुआ और वे फैक्ट्री की तरफ तेज कदमों से चल दिये।

ईस्टर मज़दूरों पर निष्कासन की कार्रवाई

एकताबद्ध संघर्ष के लिए आगे आना होगा!

(बिगुल संवाददाता)

खटीमा (ऊधमसिंह नगर)। स्थानीय ईस्टर इण्डस्ट्रीज में मज़दूरों पर प्रबंधन का दबाव लगातार बढ़ता जा रहा है। पिछले दिसम्बर-जनवरी में चले आन्दोलन के दौरान अवैधानिक तौर से यूनियन प्रतिनिधियों सहित 28 मज़दूरों के निलम्बन की इकतरफा जांच द्वारा अगस्त माह में उसे निष्कासन में बदलने के साथ ही प्रबंधन ने तीन और श्रमिकों की सेवाएं समाप्त कर दी हैं। दो अन्य मज़दूरों के सिर पर तलवार लटक रही है। प्रबंधन मज़दूरों पर शिकंजा लगातार कसता जा रहा है।

उल्लेखनीय है कि ईस्टर के मज़दूर 20 प्रतिशत बोनस की मांग करते हुए पिछले वर्ष दिसम्बर माह में आंदोलन की राह पर थे। प्रबंधन ने आन्दोलन तोड़ने की गरज से 8 दिसम्बर को 9 मज़दूरों को निलम्बित करके और 10 दिसम्बर को 13 मज़दूरों को अवैधानिक श्रमिक तालाबन्दी के तहत, प्रवेश निषेध कर दिया। परिणामस्वरूप 'ईस्टर इण्डिया इम्प्लाइज यूनियन' (इंटक) के नेतृत्व मे मज़दूरों का बहुलांश हड़ताल पर चला गया। ईस्टर में दो यूनियनें हैं। हड़ताल मुख्य यूनियन ने किया था, लेकिन दूसरी यूनियन हड़ताल में शामिल नहीं हुई थी। इसलिए प्रबंधन के हौसले शुरू से ही बुलन्द थे। लिहाजा डेढ़ माह की हड़ताल के दौरान लगभग आधे मज़दूर (453 में से 220) धीरे-धीरे काम पर वापस लौट गये। अन्ततः पूरे मुद्दे को श्रम न्यायालय में डालकर हड़ताल 23 जनवरी को समाप्त हो गयी थी। उस वक्त 28 मज़दूरों को निलम्बित कर दिया गया था जिनकी सेवाएं अब समाप्त कर दी गयी हैं। इस वक्त इस कार्रवाई की श्रम न्यायालय से प्रबंधन द्वारा अनुमति लेने की प्रक्रिया में उन मज़दूरों को 75 प्रतिशत वेतन का भुगतान हो रहा है। इसी दौरान पांच अन्य मज़दूर वी.आर.एस. के तहत बाहर भी हो चुके हैं।

उधर यूनियन को तोड़ने और मज़दूरों पर दबाव बढ़ाने की गरज से प्रबंधन ने यूनियन के समर्पित पांच और लोगों को जांच के दायरे में ला खड़ा किया। कारखाने में डेढ़ दशक से कार्यरत श्रमिक अभिमन्यु सिंह व हेल्पर विनोद कुमार शर्मा की तथाकथित रूप से फर्जी योग्यता दर्शाने के आरोप में व गजराज सिंह को एक सप्ताह के अवकाश के लिए फर्जी चिकित्सकीय प्रमाण पत्र देने (जो कि कहीं से सिद्ध नहीं हो रहा है) के आरोप में प्रबंधन ने सेवा समाप्त कर दी। अभी दो अन्य की जांच चल रही है।

आन्दोलन समाप्त होने के बाद से ही प्रबंधन मज़दूरों का तरह-तरह से उत्पीड़न करता रहा है। अब तरह-तरह से पूछ-ताछ के माध्यम से मानसिक यंत्रणा देने, यूनियन कार्यों की सक्रियता रोकने, छुट्टियों पर अघोषित रोक लगाने आदि का काम किया जा रहा है। अब कारखाने में टिफिन लाने वालों को चिह्नित किया जा रहा है ताकि उन्हें लंच टाइम में गेट से बाहर निकलने से रोक लगाई जा सके। आज ईस्टर के मज़दूरों में काफी दहशत का माहौल है। इसे कम करने और मज़दूरों की हौसला अफजाई के लिए अभी 'ईस्टर इण्डिया इम्प्लाइज यूनियन' ने मज़दूरों के नाम एक अपील भी बांटी है और एकजुटता का आह्वान किया है।

ईस्टर कारखाने के मज़दूरों के संघर्ष का भी एक लम्बा इतिहास रहा है। 17 वर्ष पूर्व स्थापित फिल्म और धागा बनाने वाले इस कारखाने में दमन, शोषण और मामूली वेतन के खिलाफ शुरू से ही मज़दूरों ने अपने को संगठित किया और आन्दोलन की राह पकड़ी। इन लड़ाइयों के माध्यम से उन्होंने सहूलियतें, बेहतर वेतनमान, स्थायीकरण व अधिकार प्राप्त किये। इसके एवज में उन्हें तमाम कुर्बानियां भी देनी पड़ीं। वर्तमान यूनियन अध्यक्ष व मंत्री 1990 से ही निष्कासित हैं, जिनका मामला श्रम न्यायालय में अभी तक लम्बित है। संघर्षों के कारण ही यहां के मज़दूर स्थायी होते गये। 1995 तक तो यहां 535 नियमित श्रमिक और 300 दैनिक वेतनभोगी श्रमिक कार्यरत थे। बाद में यहां नियमितीकरण भी बन्द हो गया और उल्टे वी.आर.एस. लागू कर दिया गया जिसके तहत अब तक लगभग 100 श्रमिक यहां से छुट्टी पा चुके हैं। प्रबंधन के अनुसार अभी भी कारखाने में अतिरिक्त श्रमिक हैं। ज़ाहिरा तौर पर वी.आर.एस. की जगह फर्जी आरोप मढ़ना और सेवा समाप्त करना फायदेमन्द है।

ईस्टर के मज़दूरों के सामने जो मौजूदा संकट है उसकी मूल वजह उनकी खुद की एकता का बिखराव है। वैसे भी किसी कारखाने में एक से दो यूनियन का होना ही प्रबंधन के हाथों को मजबूत करना है। दूसरे अपनी-अपनी नौकरी को बचाने की चिन्ता अन्त में सबकी नौकरी के लिए खतरा पैदा कर देती है। और ये हालात यूनियन को नेस्तनाबूद करने और कारखाने में बंधुआ मज़दूर बनाने की स्थिति पैदा कर देता है। तीसरे, यह बात याद रखने की है कि इस पूंजीवादी व्यवस्था में सारे कानून भी मालिकों की ही हित सेवा के लिए बने हुए हैं, इसलिए श्रम कानूनों का इस्तेमाल तो करना चाहिए लेकिन उसकी पेचीदगियों के उलझाव में फंसने की जगह अपनी मजबूत एकताबद्ध संघर्ष पर ही मुख्य ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

ईस्टर के मज़दूरों को यह भी बात ध्यान देना चाहिए कि उनके सामने मौजूद संकट अलग-अलग रूपों में आज पूरे मुल्क के मज़दूरों के समक्ष मौजूद संकट के समान ही है। आज पूरे मुल्क में मालिकों के हौसले बुलन्द हैं। मेहनतकशों को लूटने के नाम पर वे एकजुट हैं, उनके चैम्बर सक्रिय हैं। ऐसे में यहां के मज़दूरों को भी जाति-धर्म-क्षेत्र व अलग-अलग यूनियनों के बंटवारे को छोड़कर कारखाने स्तर पर अपनी फौलादी एकता तो बनानी ही होगी, साथ ही अन्य कारखानों-विभागों के मेहनतकशों से, पूरे इलाकाई पैमाने पर भी वर्गीय एकता कायम करनी होगी। प्रबंधकों के पास इतने हथकण्डे होते हैं कि वे कभी भी किसी मज़दूर को फंसा सकते हैं, उन्हें बाहर कर सकते हैं।

यह भी गौरतलब बात है कि मालिकों के पक्ष में एक घातक श्रम कानून आना चन्द दिनों की बात है। इसलिए भी एकताबद्ध संघर्ष के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। हार और जीत तो संघर्षों के दौरान होती ही रहती है, लेकिन एक मज़दूर हमेशा एक बेहतर ज़िन्दगी की चाहत के साथ अगले संघर्ष की तैयारी में जुट जाता है, अपनी तात्कालिक हार को जीत में बदलने के लिए, अपनी अन्तिम जीत को मुकम्मल बनाने के लिए।

बोलते आंकड़े, चीखती सच्चाईयां

● "एक आंकलन के मुताबिक अगले दस वर्षों में 7 करोड़ लोग बेरोजगार हो जाएंगे। कृषि क्षेत्र में भी नये लोगों का प्रवेश सीमित संख्या में संभव है। अर्थात 'रोजगारविहीन किसान' तथा एन.एस.एस. (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण) के आकलन के अनुसार 1991 के बाद से बेरोजगारी दर में वृद्धि हुई है। 1993-94 में बेरोजगारी की बढ़ोत्तरी 6 प्रतिशत से 1999-2000 में 7 प्रतिशत से अधिक हो गयी।"

(द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा सरकार को सौंपे गये रिपोर्ट से)

● 31 मार्च 2001 तक, 2,52,947 बड़ी, मंझोली और छोटी इकाइयां "बीमार" हो चुकी थीं और उनमें से ज्यादातर बंद भी हो चुकी हैं। भूमण्डलीकरण की नीतियों के तहत बड़ी पूंजी द्वारा छोटी पूंजी का लीलना लगातार तेज रफ्तार से जारी है।

● कारखाना बन्दी, छंटनी, स्वैच्छिक (जबरिया) सेवा योजना, डाउन साइजिंग आदि के कारण पिछले एक दशक के दौरान लगभग 4 करोड़ लोगों का रोजगार छिन चुका है। केवल कारखाना क्षेत्र में महज पिछले दो वर्षों के दौरान 7 लाख मज़दूर नौकरी गवां चुके हैं। केन्द्र सरकार द्वारा कर्मचारियों की संख्या में 10 प्रतिशत कमी का ऐलान हो चुका है। पिछले दिनों केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के 40 हजार कर्मचारियों की छुट्टी कर दी गयी। यही हालात निजी क्षेत्र में भी है। केवल कपड़ा उद्योग में 3 लाख 90 हजार श्रमिक बेरोजगार हो चुके हैं। निजी क्षेत्र के दूसरे भारी उद्योगों ने पिछले दो वर्षों में 50 हजार श्रमिकों की छुट्टी कर दी है। आज के दौर में रोजगार का विशाल क्षेत्र दिखने वाले सूचना तकनीकी क्षेत्र ने पिछले वर्ष 10 हजार लोगों की नौकरियां लील ली हैं। पिछले वर्ष बैंकों से वी.आर.एस. के तहत लगभग सवा लाख लोग बाहर हो गये।

● पिछले डेढ़ दशक के दौरान सरकारी क्षेत्र से 40 प्रतिशत से ज्यादा लोग कार्य मुक्त हुए लेकिन भर्तियां नगण्य रहीं।

अमली काम की शुरुआत जांच-पड़ताल से करो

अमली काम करने वाले हर व्यक्ति को नीचे के दर्जों में जाकर उनकी स्थिति की जांच-पड़ताल करनी चाहिए। इस प्रकार की जांच-पड़ताल करना खास तौर पर उन लोगों के लिए जरूरी है जो सिद्धान्त को तो जानते हैं लेकिन वास्तविक स्थितियों को नहीं जानते; क्योंकि इसके बिना वे सिद्धान्त को व्यवहार के साथ नहीं मिला पाएंगे। हालांकि मेरे इस कथन को कि "बिना जांच-पड़ताल किए किसी को बोलने का हक नहीं है" "संकीर्ण अनुभववाद" का नाम देकर उसकी खिल्ली उड़ाई गई है, फिर भी आज तक मुझे अपने इस कथन पर जरा भी अफसोस नहीं; अफसोस करना तो दूर रहा, उल्टे मैं आज भी यह बात डंके की चोट से कहता हूं कि जिसने जांच-पड़ताल न की हो उसे बोलने का हक कतई हासिल नहीं हो सकता। बहुत से लोग ऐसे हैं जो "सरकारी गाड़ी से नीचे उतरते ही" शोरगुल मचाने लगते हैं, अन्धाधुन्ध रायजनी करने लगते हैं, किसी चीज की नुक्ताचीनी करने लगते हैं तो किसी चीज की निन्दा; लेकिन दरअसल ऐसे सभी लोगों को असफलता का मुंह देखना पड़ता है। क्योंकि जो विचार और जो आलोचनाएं पूरी जांच-पड़ताल पर आधारित नहीं हैं, वे महज फिजूल की बकवास हैं। इन "शाही दूतों" की मेहरबानी से, जो जहां-तहां दौड़ते फिरते हैं, हमारी पार्टी को अनगिनत मौकों पर नुकसान उठाना पड़ा है। स्तालिन ने ठीक ही कहा है, "सिद्धान्त को यदि क्रान्तिकारी व्यवहार से न मिलाया गया तो वह निरुद्देश्य साबित होता है"। उन्होंने आगे कहा है और ठीक ही कहा है, "अगर हमारे व्यवहार का रास्ता क्रान्तिकारी सिद्धान्त के ज़रिए रोशन नहीं किया जाएगा, तो हमारा व्यवहार अंधेरे में रास्ता टटोलने के समान होगा"। किसी भी व्यक्ति पर "संकीर्ण अनुभववादी" का लेबिल नहीं लगाना चाहिए, सिर्फ उस "व्यावहारिक व्यक्ति" को छोड़कर, जो अंधेरे में रास्ता टटोलता रहता है तथा दिशा-ज्ञान और दूरदर्शिता नहीं रखता।

[माओ त्से-तुङ, "'देहातों की जांच-पड़ताल' की प्रस्तावना और पश्चलेख" (मार्च और अप्रैल 1941), संकलित रचनाएं (अंग्रेजी संस्करण), ग्रन्थ-3, पृष्ठ-13]

भगतसिंह के जन्मदिवस (27 सितम्बर) के अवसर पर

भगतसिंह और मज़दूर आन्दोलन

शहीदेआजम भगतसिंह ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन में समाजवाद और मज़दूर क्रान्ति के विचार को स्थापित किया। उन्होंने एक ऐसी आज़ादी का सपना देखा था जिसमें सत्ता पूंजीपतियों के चाकरों के नहीं बल्कि मज़दूरों -किसानों के हाथों में होगी। उन्होंने साफ कहा था कि इस देश के मज़दूरों और किसानों के लिए इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि आज़ादी के बाद लार्ड इरविन के स्थान पर सेठ पुरुषोत्तम दास या बिड़ला जी आ जायें।

जेल में तैयार किये गये 'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा' में भगत सिंह ने लिखा, "भारतीय पूंजीपति भारतीय जनता को धोखा देकर विदेशी पूंजी से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएं अब सिर्फ समाजवाद पर टिकीं हैं और सिर्फ यही पूर्ण स्वराज और सब भेदभाव खत्म करने में सहायक साबित हो सकता है।"

भगत सिंह ने असेम्बली में बम फेंकने के लिए खासतौर पर वह दिन चुना था जिस दिन ब्रिटिश सरकार सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक तथा औद्योगिक विवाद विधेयक पेश करने जा रही थी जिनका उद्देश्य स्वतंत्रता आन्दोलन तथा खासकर मज़दूरों के बढ़ते संघर्षों का दमन करना था।

जेल में लिखे गए अनेक लेखों और अदालत में अपने बयानों में भगतसिंह ने इस बात को जोरदार तरीके से उठाया कि व्यापक मज़दूर-किसान आबादी को एक क्रान्तिकारी पार्टी माध्यम से संगठित करके ही ऐसा इंकलाब लाया जा सकता है जो देश से शोषण-उत्पीड़न का खात्मा कर देगा। मज़दूर आन्दोलन में फैले गलत विचारों पर चोट करते हुए उन्होंने कहा था: "मज़दूर आन्दोलन में ऐसे व्यक्ति हैं जो मज़दूरों और किसानों की आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के बारे में बड़े विचित्र विचार रखते हैं ये लोग उत्तेजना फैलाने वाले या बौखलाए हुए हैं। हमारा मतलब जनता की आर्थिक स्वतंत्रता से है और इसी के लिए हम राजनीतिक ताकत हासिल करना चाहते हैं। शुरू में छोटी-बड़ी आर्थिक मांगों और इन वर्गों के विशेष अधिकारों के लिए हमें लड़ना होगा। यह संघर्ष उन्हें राजनीतिक ताकत हासिल करने के लिए अन्तिम संघर्ष के लिए सचेत व तैयार करेगा।"

आज से तीन वर्ष पूर्व प्रकाशित भगतसिंह की ऐतिहासिक जेल नोट बुक इस बात का साक्ष्य है कि भगतसिंह अपने अन्तिम दिनों तक इस देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन की वैचारिक समस्याओं से जूझ रहे थे। उन्होंने इस बात पर बेहद जोर दिया कि भारतीय क्रान्ति का वैचारिक पहलू कमजोर रहा है और इस देश की ठोस सच्चाइयों और वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा का गहराई से अध्ययन किये बिना जनता के संघर्षों को सही दिशा नहीं दी जा सकती। यह नोटबुक एक बार फिर इस बात का अहसास कराती है कि अगर सिर्फ 23 वर्ष की उम्र में भगतसिंह को फांसी न हुई होती तो राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और भारतीय सर्वहारा क्रान्ति का इतिहास कुछ और ही ढंग से लिखा जाता।

इतिहास की इस धरोहर से एक उद्धरण यहां प्रस्तुत है:

"सुधरी हुई राजनीतिक संस्थाएं, पूंजी और श्रम के बीच समझौता कराने वाली परिषदें, परोपकार और विशेषाधिकार जो पूंजीपतियों की खैरातों के अलावा और कुछ नहीं है – इनमें से कोई भी चीज उस सवाल का जवाब नहीं दे सकती जो मंदिरों, सत्ता के सिंहासनों और संसदों को कंपकंपा रहा है। जो लोग दबे-कुचले हैं और जो उनकी पीठ पर सवार होकर आगे बढ़े हुए हैं, अब इन दोनों के बीच कोई अमन-चैन नहीं रह सकता। अब वर्गों के बीच कोई मेल-मिलाप नहीं हो सकता। अब तो वर्गों का सिर्फ अन्त ही हो सकता है। जब तक पहले न्याय न हो, तब तक सद्भावना की बात करना अनर्गल प्रलाप है, और जब तक इस दुनिया का निर्माण करने वालों का अपनी मेहनत पर अधिकार न हो, तब तक न्याय की बात करना बेकार है।"

प्रस्तुति : अभिनव

क्रान्ति के लिए भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया-भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया कराने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करनेवाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूंजीपति जरा-जरा सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते संभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जो साम्राज्यशाही के नाम से विख्यात है, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होनेवाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूंजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

यह है हमारा आदर्श। और इसी आदर्श से प्रेरणा लेकर हमने एक सही तथा पुरजोर चेतावनी दी है। लेकिन अगर हमारी इस चेतावनी पर धयान नहीं दिया गया और वर्तमान शासन-व्यवस्था उठती हुई जनशक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने से बाज न आयी तो क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भंयकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढ़ते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। ... हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

-भगतसिंह

(असेम्बली बमकाण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान)

इंकलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है!

भगतसिंह

- क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है – अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

(दिल्ली के सेशन जज की अदालत में बयान)

- अलग-अलग और खाने-पीने का भेदभाव हर हालत में मिटाना जरूरी है। छूत-अछूत शब्दों को जड़ से निकालना होगा।

जब हम अपनी तंगदिली छोड़कर एक न होंगे, तबतक हममें वास्तविक एकता नहीं हो सकती। इसलिए ऊपर लिखी बातों के अनुसार चलकर ही हम आज़ादी की ओर बढ़ सकते हैं। हमारी आज़ादी का अर्थ केवल अंग्रेजी चंगुल से छुटकारा पाने का नाम नहीं, वह पूर्ण स्वतंत्रता का नाम है। जब लोग परस्पर घुल-मिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से आजाद हो जायेंगे।

('धर्म और हमारा स्वतंत्रता संग्राम, 1928 में किरती पत्रिका में प्रकाशित लेख से)

- निरा विश्वास और अन्धविश्वास खतरनाक होता है, इससे मस्तिष्क कुण्ठित होता है और आदमी प्रतिक्रियावादी हो जाता है।

- "जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है तो किसी भी प्रकार की तब्दीली से वे हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की जरूरत होती है, अन्यथा पतन और बर्बादी का वातावरण छा जाता है। लोगों को गुमराह करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियां जनता को गलत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती हैं। इससे इंसान की प्रगति रुक जाती है और उसमें गतिरोध आ जाता है। इस परिस्थिति को बदलने के लिए यह जरूरी है कि क्रान्ति की स्पिरिट ताजा की जाए, ताकि इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो।"

- निकट भविष्य में अंतिम युद्ध लड़ा जायेगा और युद्ध निर्णायक होगा। साम्राज्यवाद व पूंजीवाद कुछ दिनों के मेहमान हैं। यही वह लड़ाई है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया है और हम अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त होगा।

(फांसी से तीन दिनों पूर्व पंजाब के गवर्नर को लिखा गया पत्र)

मालिकों के हाथ में चाबुक ...

(पेज 1 का शेष)

पूंजीपति कितने उस्ताद हैं। ऐसे में इस सिफारिश का मतलब है कि नाममात्र की राशि पकड़ाकर मज़दूरों को उनके मालिक जब चाहें निकाल बाहर करें।

लफ्फाजी की आड़ में 'हायर एण्ड फायर' (ठेका प्रथा) की वकालत

आयोग ने ठेका प्रथा के खिलाफ मज़दूरों के गुस्से को ध्यान में रखते हुए घुमा-फिराकर इसकी वकालत की है। श्रमिकों की दशा सुधारने पर फर्जी चिन्ता जताते हुए और 'हायर एण्ड फायर' को सिद्धान्ततः गलत बताते हुए उसने असल में ठेका प्रथा को पूरी छूट देने की सिफारिश की है। इसके लिए उसने शब्दों का जाल बुना है और तरह-तरह के अगर-मगर की आड़ ली है।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट में उत्पादन की समूची कार्रवाई को बुनियादी और गैर बुनियादी ('कोर एण्ड नान कोर') गतिविधियों में बांट दिया है। कैण्टीन, सिक्योरिटी, सफाई, बागवानी आदि कामों को गैर बुनियादी कैटेगरी में रखते हुए इन कामों को ठेके पर करवाने की खुली छूट दी गयी है। इसके अलावा बाकी गतिविधियों को बुनियादी बताते हुए कहने को इसमें ठेके पर काम लेने की मनाही की गयी है। लेकिन इन गतिविधियों में भी खास-खास मौकों पर ठेके पर काम लिया जा सकता है। अगर 'सीजन' के मुताबिक मांग बढ़ जाये तो बुनियादी क्षेत्रों में भी ठेके पर काम कराया जा सकता है। साफ जाहिर है कि बुनियादी गतिविधियों में ठेके पर काम लेने की मंजूरी सीधे-सीधे न देकर घुमाकर कान पकड़ा गया है।

आयोग ने एक तरह से परमानेण्ट मज़दूरों की अवधारणा को ही पूरी तरह खारिज कर दिया है। उसके अनुसार तेजी से बदलती आर्थिक स्थितियों और तकनोलाजी एवं प्रबंधन में बदलावों को देखते हुए किसी संस्थान में पदों की संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। रिपोर्ट का कहना है कि संस्थानों को यह छूट मिलनी चाहिए कि आर्थिक दक्षता के अनुपात में वे अपने श्रमिकों की संख्या को घटा-बढ़ा सकें। इसके अलावा आयोग ने वेतन के आधार पर 'कट आफ' सीमा निर्धारित कर कामगारों की परिभाषा भी नये सिरे से तय करने की सिफारिश की है। उसके अनुसार सुपरवाइजरी और उसके ऊपर के स्तर के कर्मचारियों को श्रमिकों की श्रेणी से और श्रम कानूनों के दायरे से बाहर कर दिया जाना चाहिए।

छुट्टियां घटाओ, काम के घण्टे बढ़ाओ

आयोग की नज़र में ऐसा देखने में आता है कि मज़दूर अक्सर फांकी मारते रहते हैं। वे असल में हफ्ते में औसतन तीन दिन से अधिक नहीं काम करते। इसलिए उनकी छुट्टियां कम कर देनी चाहिए और उनसे अब कानूनी तौर पर दिन में आठ के बजाय नौ घण्टे काम लेना चाहिए। हालांकि ऊपरी तौर पर रहमदिली दिखाते हुए आयोग ने कहा है कि एक हफ्ते में काम के घण्टे 48 से अधिक नहीं होने चाहिए लेकिन उसकी यह रहमदिली तब बिल्कुल थोथी साबित हो जाती है जब वह सिफारिश करता है कि काम के घण्टों के मामले में अड़ियल होने की जरूरत नहीं है।

आयोग की सिफारिश है कि श्रमिकों को साल में सिर्फ तीन दिन का राष्ट्रीय अवकाश (छुट्टी) मिलनी चाहिए। इसके अलावा राज्य सरकारें अपनी स्थानीय परम्पराओं के अनुसार दो दिन की और छुट्टी दे सकती हैं और दस दिन की प्रतिबन्धित छुट्टियां दी जा सकती हैं। लेकिन जिस हफ्ते में ये छुट्टियां हों उस हफ्ते की साप्ताहिक छुट्टी खत्म कर दी जानी चाहिए। साथ ही, जहां पांच दिन का सप्ताह हो वहां छुट्टी वाले सप्ताह में शनिवार को भी काम लेना चाहिए। इन सिफारिशों से साफ है कि मुनाफाखोरों की तरह आयोग भी मज़दूरों को सिर्फ मुनाफा देने वाली मशीन समझता है, इंसान नहीं। छुट्टियां तो इन्सानों के लिए होती हैं मशीनों के लिए थोड़े ही!

ट्रेड यूनियन अधिकारों पर कुल्हाड़ा

आयोग की नज़र में ट्रेड यूनियनें उद्योग जगत के हितों को नुकसान पहुंचाने वाली बदमाश संस्थाएं हैं। इसलिए उनके पर कुतर देने की सिफारिश की गयी है।

आयोग ने प्रबंधन से सामूहिक सौदेबाजी करने के ट्रेडयूनियनों के अधिकारों के रास्ते में तरह-तरह से फच्चर फंसा दिये हैं। उसने एक 'निगोशियेटिंग एजेण्ट' (प्रबंधन से मज़दूरों के पक्ष की बात करने वाले एजेण्ट) का आइडिया उछाला है। ये निगोशियेटिंग एजेण्ट प्रबन्धन से विवाद के निपटारे के लिए मज़दूरों की वकालत कर सकते हैं। जरूरी नहीं कि ये एजेण्ट ट्रेड यूनियनें ही हों। लेबर कोर्ट भी इस एजेण्ट का काम कर सकते हैं। इसके लिए कानून बनाने का सुझाव है। ट्रेड यूनियनें निगोशियेटिंग एजेण्ट तभी बन सकती हैं जब उन्हें 66 प्रतिशत मज़दूरों का समर्थन हासिल हो। आयोग का सुझाव है कि ज़्यादा जोर मज़दूर और प्रबंधन के बीच द्विपक्षीय स्तर पर विवाद निपटारे पर देना चाहिए। ऐसा न होने की स्थिति में सरकार से इतर किसी तीसरे पक्ष की मदद ली जा सकती है। यानी सरकार ने मज़दूरों व मालिकों के किसी भी विवाद में अपनी जिम्मेदारी से पल्लू झाड़ लिया है।

मज़दूरों की हड़तालों से आयोग बहुत खफा है। इसलिए उसने ऐसे सुझाव दिये हैं जिससे हड़ताल करना लगभग नामुमकिन बना दिया जाये। आयोग ने तथाकथित आवश्यक सेवाओं जैसे -जलापूर्ति, स्वास्थ्य सेवाओं, सफाई-व्यवस्था, बिजली एवं परिवहन जैसी सेवाओं में 'हड़ताल मतदान' (स्ट्राइक बैलट) की सिफारिश की है। इन सेवाओं में हड़ताल तभी की जा सकती है जब मान्यता प्राप्त निगोशियेटिंग एजेण्ट (यानी मान्यता प्राप्त सरकारी दलाल यूनियनें) मतदान के जरिये 51 प्रतिशत

मज़दूरों-कर्मचारियों से हड़ताल के पक्ष में समर्थन हासिल करें। जाहिर है कि इस सिफारिश का मतलब है कि मालिकों द्वारा मज़दूरों-कर्मचारियों को बांट देने और उन्हें प्रताड़ित करने की खुली छूट और हड़ताल करना लगभग असम्भव।

इसके अलावा आयोग ने 'स्लो डाउन' (धीमा कार्य) और 'वर्क टू रूल' (नियमानुसार काम) को कदाचार बताया है। "औद्योगिक शान्ति "(यानी बिना चूं-चपड़ किये मालिकों के लिए खटते रहने) से आयोग का लगाव कितना अधिक है! वह औद्योगिक "अशान्ति" (यानी अपने हकों के लिए मज़दूरों द्वारा आवाज उठाने) से इतना खफा है कि उसने "ट्रेड यूनियनों द्वारा समय-समय पर संघर्ष छेड़ने के लिए या पहले से चल रहे किसी संघर्ष के समर्थन के लिए कामकाजू संघर्ष समितियां बनाने की बढ़ती प्रवृत्ति "पर जमकर फटकार लगायी है।

अगर आयोग की सिफारिशों पर अमल के लिए कानून बन गया तो ट्रेड यूनियनें बनाना तक बेहद-बेहद मुश्किल हो जायेगा। उसकी सिफारिश है कि ट्रेड यूनियनों के गठन को मंजूरी तभी मिल सकती है जब कम से कम किसी औद्योगिक संस्थान के 10 प्रतिशत मज़दूर- कर्मचारी साथ में हों। ऐसा उसने "ट्रेड यूनियनों की बहुलता" पर नाराज होकर किया है। अब तक के कानून के मुताबिक किसी भी संस्थान के सात सदस्य यूनियन बना सकते हैं। जाहिर है कि आयोग को दलाल ट्रेड यूनियनों की बहुलता से चिन्ता नहीं है, उसे खतरा है उन यूनियनों के बनने से जो क्रान्तिकारी ढंग से मज़दूरों के हकों के लिए आवाज बुलन्द कर सकती हैं।

आयोग ने यूनियनों में बाहरी व्यक्तियों की घुसपैठ पर नाराजगी दिखायी है। उसका मानना है कि ये "बाहरी" लोग सारी गड़बड़ की जड़ में हैं। ये खतरनाक लोग मज़दूरों को राजनीति का पाठ पढ़ाते हैं। और उनके अन्दर व्यवस्था के खिलाफ बगावती चेतना भरते हैं। इसलिए आयोग ने यूनियनों में ऐसे तत्वों की घुसपैठ के लिए कानून सख्त करने की सिफारिश की हैं।

असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की फर्जी चिन्ता

आयोग असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए काफी "चिन्तित" है! उसने ढपोरशंख की तरह इन मज़दूरों के लिए स्वास्थ्य, मातृकल्याण, शिशुकल्याण, पी0 एफ0 और रिटायरमेण्ट बाद की सुविधाओं की गारण्टी जैसे तथाकथित सामाजिक सुरक्षा के उपायों की पेशकश की है। लेकिन आयोग की इस संवेदनशीलता की पोल तब खुल जाती है जब यह सवाल उठता है कि इसके लिए राशि कौन मुहैय्या करायेगा- सरकार, मालिक या अपना पेट काटकर खुद मज़दूर? आयोग ने इस पर सांस-डकार तक नहीं लिया है। संवेदनशीलता का मुखौटा ओढ़ने में भला क्या खर्च होता है? कुछ भी तो नहीं!

वेतन बोर्ड बेमानी

आयोग का यह भी मानना है कि वेतन बोर्डों का गठन फिजूल की कवायद है। उसका सुझाव है कि इसकी जगह सरकारें न्यूनतम वेतन तय करके काम चला सकती है। ऐसा करते समय सरकार को सिर्फ "उद्योग की क्षमता" और "मज़दूर व उसके परिवार की न्यूनतम जरूरतों" को ध्यान में रखना होगा। जाहिर है कि कम से कम लागत और अधिक से अधिक मुनाफा को अपना जीवन-सूत्र मानने वाला ऐसा मुनाफाखोर इस धरती पर तो नहीं ही मिलेगा जो अपने उद्योग और मज़दूर व उनके परिवार की बुनियादी जरूरतों को बढ़ा चढ़ाकर आंकेगा। लिहाजा होगा यह कि मज़दूर को उतना ही मिलेगा जितने में यह बस जिन्दा रह सके और मालिक का मुनाफा बढ़ाता रहे।

सभी कानूनों को मिलाकर एक कानून बनाओ

आयोग का एक सुझाव यह भी है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, ट्रेड यूनियन अधिनियम, औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, सेल्स प्रमोशन इम्प्लाइज (सेवा स्थितियां) अधिनियम, श्रमजीवी पत्रकार एवं समाचार पत्रों के अन्य कर्मचारियों सम्बन्धी अधिनियम आदि केन्द्र सरकार के 50 कानूनों और राज्य सरकारों के सम्बन्धित 150 कानूनों को मिलाकर एक ही कानून के दायरे में ला दिया जाये। इस एकल कानून का नाम रोजगार सम्बन्धों का कानून रखने का सुझाव दिया गया है।

सुझाव तो यह भी है कि जिस उपक्रम में 50 से कम श्रमिक काम करते हों वहाँ का प्रबन्धन खुद का कानून बना और लागू कर सकेगा। सुझाव के अनुसार ऐसे उपक्रमों के लिए अलग से कानून हों जिसका नाम उद्यमी(रोजगार सम्बन्ध) अधिनियम हो जिसे सामान्य कानून में अलग अध्याय के रूप में शामिल किया जा सकता है।

पूंजीपतियों की ताबेदारी बेमिसाल

थोड़े में कहें तो दूसरे श्रम आयोग ने देशी-विदेशी पूंजी की चाहत को सिफारिश के रूप में पेश कर सरकार के लिए कानून बनाने के रास्ते साफ कर दिये हैं। आयोग ने वही सिफारिशें की हैं जो भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद देशी-विदेशी मुनाफाखोर चाहते थे। बस उसने जगह-जगह "श्रमिकों के हित" का लेबल चस्पां कर दिया है। विश्व बैंक, आई. एम. एफ. और विश्व व्यापार संगठन की तिगड्डी से लेकर तमाम बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, देशी पूंजीपति और 'फिक्की,' एसोचैम, सी आई आई जैसी उनकी संस्थाएं जिस "लचीले श्रम" की दुहाई देती रही है। उसी को सिफारिश का जामा आयोग ने पहनाया है।

देशी-विदेशी मुनाफाखोरों के खूनी इरादों को पूरा करने के लिए सरकार पहले से ही जी तोड़ कोशिश में लगी हुई है। वह तो बजट के बहाने भी इसे पारित करने की कोशिश कर चुकी है। अपने पूंजीपति मालिकों की सेवा करने में मौजूदा केन्द्र सरकार कितनी तत्पर है इसका एक नंगा उदाहरण उस समय मिल चुका है जब वर्ष 2001-2002 का आम बजट पेश करते हुए परम्परा से हटकर तत्कालीन वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा ने 1000 से अधिक श्रमिक संख्या वाली औद्योगिक इकाईयों में मज़दूरों की छंटनी, ले आफ और तालाबन्दी की खुली छूट देने की वकालत की थी। लेकिन देश भर में मज़दूरों के कड़े

(पेज 10 पर जारी)

भगत सिंह की बात सुनो!
नई क्रान्ति की राह चुनो!!

विशेष सामग्री

(अठारहवीं किश्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय - 6

पार्टी का केन्द्रीकृत नेतृत्व

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मज़दूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मज़दूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मज़दूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में अठारहवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

\- सम्पादक

कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को सचेतन तौर पर केन्द्रीकृत नेतृत्व के अंतर्गत आना चाहिए और उसे कायम रखना चाहिए

पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व का सशक्तीकरण और सर्वहारा वर्ग की अग्रिम कतारों में इसकी नेतृत्वकारी भूमिका को प्रयोग में लाए जाने, और, कम्युनिस्टों की उन्नत तत्वों और मिसाल बनने की भूमिका को अलग नहीं किया जा सकता। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रत्येक सदस्य को इस भूमिका को अवश्य निभाना चाहिए, उसे सचेतन तौर पर पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत आना चाहिए और उसे कायम रखना चाहिए।

सैद्धान्तिक मोर्चे पर हमें पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के सशक्तीकरण के भारी महत्व के संबंध में अपनी चेतना का स्तर उठाना चाहिए। पार्टी के भीतर वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष और समाजवाद के सम्पूर्ण ऐतिहासिक दौर में क्रान्ति और निर्माण में हमारे द्वारा कन्धों पर उठाई जाने वाली जिम्मेदारियों का जटिल व दीर्घकालिक चरित्र होता है। ऐसे में यह पूरी तरह हम पर निर्भर करता है कि हम पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत बनाएं, न कि कमजोर। सर्वहारा की तानाशाही को उखाड़ फेंकने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के अपने प्रयासों में, बाहरी और भीतरी, दोनों प्रकार के वर्ग शत्रुओं ने हमेशा अपने हमलों का रुख हमारी पार्टी की तरफ रखा है। हमारी कतारों में घुसकर और हमारे कैडरों को अपनी कतारों में आकर्षित करके, वे इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी को एक संशोधनवादी पार्टी, फासिस्ट पार्टी में तब्दील करने और पूरे चीन का रंग बदल डालने की व्यर्थ आशा लिए, हमारी पार्टी में दलाल पैदा करने की हर मुमकिन कोशिश करते हैं। इन कोशिशों के बरक्स हमें अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए। कुछ कामरेड सोचते हैं कि पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत करने का काम नेतृत्व का मामला है और उनका इससे कोई लेना-देना नहीं है। यह सिरे से गलत है। जैसा कि कामरेड स्तालिन ने कहा है: **"पार्टी के नेतृत्व के बगैर ... सर्वहारा की तानाशाही असंभव होगी। सर्वहारा की तानाशाही को हिला देने और कमजोर बना देने के लिए इतना काफी होगा कि पार्टी को हिला दिया जाय और कमजोर बना दिया जाय।"** (जे.वी. स्तालिन, रचनाएं, खण्ड-7, "सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की चौदहवीं कांग्रेस, केन्द्रीय कमेटी की राजनीतिक रपट", विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, 1954, पृ. -352, अंग्रेजी संस्करण) इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सर्वहारा वर्ग का बुनियादी हित पार्टी के नेतृत्व को कायम रखने पर निर्भर करता है। यह एक बेहद महत्वपूर्ण प्रश्न है जिस पर सर्वहारा की तानाशाही का सशक्तीकरण और विकास टिका हुआ है। तो फिर कैसे कोई कम्युनिस्ट यह दावा कर सकता है कि उसका सरोकार इससे (इस प्रश्न से - अनु.) नहीं है? प्रत्येक कम्युनिस्ट को वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष की गौरवपूर्ण जमीन से इन प्रश्नों पर विचार करना चाहिए ताकि वह पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के सशक्तीकरण, पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत आने और उसे कायम रखने के महत्व को समझ सके।

हमें व्यक्ति और संगठन के बीच के संबंधों को सही ढंग से चलाना चाहिए, पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत कृतसंकल्प होकर आना चाहिए और बस जो जी में आए वह नहीं करना चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टी का प्रत्येक सदस्य समष्टि (समूह) का एक अभिन्न अंग है। उसे किसी एक पार्टी संगठन का सदस्य होना ही चाहिए और संगठन के नेतृत्व के अन्तर्गत पार्टी के कार्यक्रम और कार्यदिशा को लागू करने के लिए कार्य और संघर्ष करना चाहिए। अपने संगठन को अपनी विचारधारा और अपने कामों की स्थिति की रिपोर्टिंग करते हुए उसे पार्टी संगठनों को रिपोर्ट देने की व्यवस्था को अवश्य कायम रखना चाहिए। उसे जनता की भावनाओं और मांगों को प्रकट करना चाहिए, पार्टी संगठन की सहायता और प्रोत्साहन के साथ, पार्टी और जनता के बीच के बंधनों को और मजबूत करना चाहिए और पार्टी का काम अच्छी तरह करना चाहिए। यदि हम व्यक्ति और संगठन के बीच के रिश्ते को पलट दें और यह चाहते हुए व्यक्ति को संगठन पर वरीयता दें कि संगठन व्यक्ति के आगे झुक जाए, तो हम पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को कमजोर करेंगे। यह बहुत ही खतरनाक होगा। विभिन्न स्तरों (जनरल ब्रांच, ब्रांच) पर पार्टी कमेटियों में नेतृत्वकारी स्थानों पर काबिज कम्युनिस्टों के लिए, यह और भी जरूरी है कि वे इस प्रश्न पर ध्यान दें। उन्हें अपने आपको पार्टी कमेटी के बाहर नहीं, और ऊपर तो कतई न रखते हुए और उसके भीतर रखते हुए, उसके केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत अवश्य आना चाहिए, ताकि वे अपनी जिम्मेदारी के काम को सुधार सकें। उन्हें सम्पूर्ण स्थिति को ध्यान में रखने वाले दृष्टिकोण से प्रस्थान करना चाहिए, न कि महज अपने क्षेत्र को ध्यान में रखकर और उन्हें अपने इलाके, डिपार्टमेंट या इकाई को किसी भी हालत में एक "स्वतंत्र बादशाहत" नहीं बना लेना चाहिए। क्रान्तिकारी जन संगठनों में सभी स्तरों पर जिम्मेदारी उठाने वाले कम्युनिस्टों को अपने स्तर पर पार्टी संगठन के केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत जरूर आना चाहिए, निर्देश के लिए कहना चाहिए और संगठन को जितना ज्यादा सम्भव हो उतनी रिपोर्टिंग करनी चाहिए। साथ ही साथ उन्हें उच्चतर निकायों के नेतृत्व में अपने कामों को फुर्ती और पहल के साथ अंजाम देना चाहिए। संक्षेप में, कम्युनिस्ट पार्टी के हरेक सदस्य को व्यक्ति और संगठन के बीच के रिश्ते को सही ढंग से चलाना चाहिए और कृतसंकल्प हो पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत आना चाहिए - ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह राजनीतिक मोर्चे पर अपनी मनमर्जी चलाए, सांगठनिक मोर्चे पर सोचे एक ढंग से और काम करे दूसरे ढंग से, काम में अपने आपको सबसे तेज न समझे - और पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को बचाने की एक मिसाल पेश करे।

हमें उन गलत बातों और कामों के विरुद्ध कृतसंकल्प होकर संघर्ष करना चाहिए जो पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को कमजोर करते हैं और उसमें तोड़-फोड़ करते हैं। पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत करने और कायम रखने की इच्छा वाले लोगों और उन लोगों के बीच जो इसे कमजोर करना चाहते हैं और नुकसान पहुंचाना चाहते हैं, संघर्ष लम्बे समय तक चलता रहेगा। प्रत्येक कम्युनिस्ट को अपने आपको साहस के साथ पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को बचाए रखने के लिए समर्पित कर देना चाहिए ताकि वह सर्वहारा की तानाशाही को और मजबूत कर सकें। ल्यू शाओ-ची, लिन प्याओ और ऐसे दूसरे उचक्के, तथा पूंजीवादी रास्ते पर चलने वाले, सत्ता में महत्वपूर्ण स्थानों पर काबिज चंद मुट्ठी भर लोग जो पार्टी में घुस आए थे, निश्चित रूप से पार्टी के चरित्र, कार्यक्रम और कार्यदिशा बदलने के अपने आपराधिक उद्देश्य को पाने की खातिर पार्टी के नेतृत्व को नष्ट करने की फिराक में थे। हालांकि ल्यू शाओ-ची और लिन प्याओ को धूल चटा दी गई है, पर यह संघर्ष किसी भी तरह खत्म नहीं हुआ है। भविष्य में ऐसे व्यक्ति पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को कपट-कौशल के जरिए नष्ट करने के वास्ते फिर सामने आ सकते हैं। इसीलिए हमें अपनी आंखें खुली रखनी चाहिए और अपनी सतर्कता बढ़ा देनी चाहिए ताकि हम पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को नष्ट करने की खातिर ल्यू शाओ-ची और लिन प्याओ की नस्ल के उचक्कों द्वारा रचे गए षडयंत्रों को विफल कर सकें। हमें धारा के विरुद्ध जाने का साहस रखने वाली क्रान्तिकारी भावना के साथ इन लोगों के खिलाफ दृढ़संकल्प होकर संघर्ष करना चाहिए। हमारी कतारों में ऐसे कामरेड हैं जो स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठतर समझते हैं, जो घमण्डी हैं, जो पार्टी के सामूहिक नेतृत्व की कद्र नहीं करते और अपने मनचाहे तरीके से काम करते हैं, और सारे महत्वपूर्ण मसलों को स्वयं ही निपटा लेते हैं। ऐसे भी कामरेड हैं जिनके पास एक मजबूत पार्टी अवधारणा नहीं होती, और, अपनी जिम्मेदारी के कार्य के क्षेत्र में, वे पर्याप्त मात्रा में निर्देश नहीं मांगते और अपने स्तर पर पार्टी संगठन को पर्याप्त रिपोर्टें नहीं देते हैं। और ऐसे भी कामरेड हैं, जो एकतरफा ढंग से पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व की ओर देखते हैं - कहने का मतलब है कि वे समझते हैं कि पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत आने का अर्थ होता है पूरी तरह उस पर निर्भर हो जाना। महत्वपूर्ण मुद्दों और मामूली मुद्दों, दोनों के लिए ही वे पार्टी कमेटी की स्वीकृति मांगते हैं, और इस तरह वे कमेटी को बुनियादी मुद्दों को हाथ में लेने से रोकते हैं। ये सारी गलतियां पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत बनाने की प्रक्रिया को नुकसान पहुंचाती हैं। हमें इन अलग-अलग मामलों के बीच भेद अवश्य करना चाहिए, ताकि हम उन्हें सुधार सकें, यह समझ सकें कि कार्यदिशा के रूप में क्या चीज इनसे जुड़ी हुई है और इन कामरेडों की उनकी समझदारी को ऊपर उठाने और दृष्टिकोण को सुधारने में मदद कर सकें। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रत्येक सदस्य को अपनी पार्टी अवधारणा को मजबूत करना चाहिए, उसे अपनी सर्वहारा पार्टी भावना को मजबूत करना चाहिए, और पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व का बचाव करने और इस नेतृत्व को कमजोर बनाने और तोड़ने की ओर लक्षित गलत प्रवृत्तियों के षडयंत्रों का विरोध करने और उन्हें निष्फल करने के लिए अपनी चेतना का स्तर ऊंचा उठाना चाहिए।

(क्रमशः)

नारी सभा

कैथर कला की औरतें

गोरख पाण्डेय

तीज-व्रत रखतीं धान-पिसान करती थीं
ग़रीब की बीवी
गांव भर की भाभी होती थीं
कैथर कला की औरतें

गाली-मार खून पीकर सहती थीं
काला अच्छर
भैंस बराबर समझती थीं
लाल पगड़ी देखकर घर में
छिप जाती थीं
चूड़ियां पहनती थीं
ओठ सीकर रहती थीं
कैथर कला की औरतें

जुल्म बढ़ रहा था
ग़रीब-गुरबा एकजुट हो रहे थे
बगावत की लहर आ गयी थी
इसी बीच एक दिन
नक्सलियों की धर-पकड़ करने आयी
पुलिस से भिड़ गयीं
कैथर कला की औरतें
अरे, क्या हुआ? क्या हुआ?
इतनी सीधी थीं गऊ जैसी
इस कदर अबला थीं
कैसे बंदूकें छीन लीं
पुलिस को भगा दिया कैसे?
क्या से क्या हो गयीं
कैथर कला की औरतें?
यह तो बगावत है
राम-राम, घोर कलिजुग आ गया

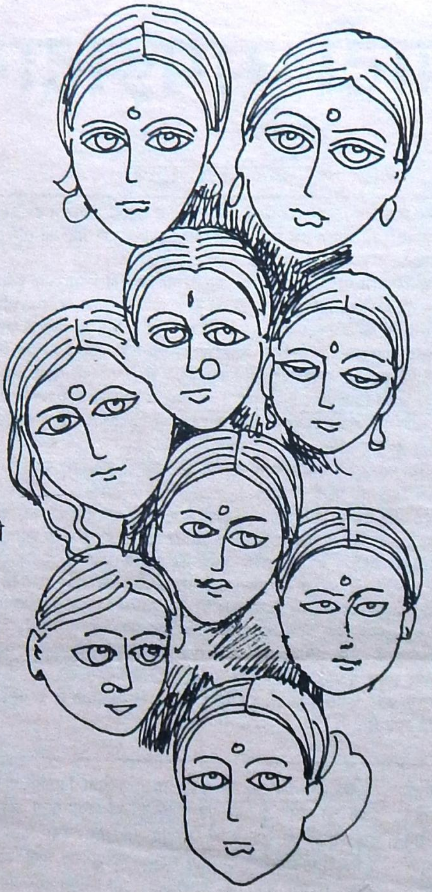

औरत और लड़ाई?
उसी देश में जहां भरी सभा में
द्रौपदी का चीर खींच लिया गया
सारे महारथी चुप रहे
उसी देश में
मर्द की शान के ख़िलाफ यह जुर्रत?

ख़ैर, यह जो अभी-अभी
कैथर कला में छोटा-सा महाभारत
लड़ा गया और जिसमें
ग़रीब मर्दों के साथ कंधे से कंधा
मिला कर
लड़ी थीं कैथर कला की औरतें
इसे याद रखें
वे जो इतिहास को बदलना चाहते हैं
और वे भी
जो इसे पीछे मोड़ना चाहते हैं
इसे याद रखें
क्योंकि आने वाले समय में
जब किसी पर जोर-जबरदस्ती नहीं
की जा सकेगी
और जब सब लोग आज़ाद होंगे
और खुशहाल
तब सम्मानित
किया जायेगा जिन्हें
स्वतंत्रता की ओर से
उनकी पहली कतार में
होंगी
कैथर कला की औरतें।

चीनी जनता के महान लेखक लू शुन के जन्मदिवस (25 सितम्बर) के अवसर पर

अक्लमंद, मूर्ख और गुलाम

लू शुन

एक गुलाम हरदम लोगों की बाट जोहता रहता था, ताकि उन्हें अपना दुखड़ा सुना सके। वह बस ऐसा ही था और बस इतना ही कर सकता था। एक दिन उसे एक अक्लमंद आदमी मिल गया।

"मान्यवर!" वह उदास स्वर में रोते हुए बोला, उसके गालों पर आंसुओं की धार बह चली, "आप जानते हैं, मैं कुत्ते की जिन्दगी जी रहा हूं। मुझे दिन भर में एक बार भी खाना नसीब नहीं, और अगर मिलता भी है तो बस वही बाजरे की भूसी, जिसे सुअर भी नहीं खाता। और उसकी भी क्या कहूं जो एक छोटी कटोरी भर से ज्यादा नहीं मिलती ...।"

"यह तो वाकई बहुत बुरा है," अक्लमंद आदमी ने सहानुभूति जतायी।

"और क्या?", वह कुछ उत्तेजित हो उठा, "जबकि मैं सारा दिन और सारी रात खटता रहता हूं। पौ फटते ही मुझे पानी भरना पड़ता है, सांझ को मैं खाना पकाता हूं, सुबह मैं सौंपे गये काम निपटाता हूं, शाम को मैं गेंहू पीसता हूं, जब मौसम अच्छा होता है तो मैं कपड़े धोता हूं, और जब बारिश होती है तो मुझे छाता थामना पड़ता है, जाड़े में मैं अंगीठी सुलगाता हूं, और गर्मी में पंखा झलता हूं। आधी रात को मैं खुम्मियां उबालता हूं और जुआरियों की पार्टियों में व्यस्त अपने मालिक का इन्तजार करता हूं। लेकिन कभी मुझे कोई बख़्शीश नहीं मिलती, बस जब-तब चाबुक ही खानी पड़ती है ...।"

"मेरे प्यारे..." अक्लमंद आदमी ने निःश्वास छोड़ी। उसकी आंखों के किनारे कुछ-कुछ लाल हो चुके थे, मानो अब वह रो देने वाला हो।

"मैं ऐसे नहीं जी सकता, मान्यवर। मुझे कोई न कोई उपाय ढूंढना ही होगा। लेकिन मैं क्या करूं?"

"मुझे विश्वास है कि हालात जरूर सुधरेंगे...।"

"क्या आप ऐसा सोचते हैं? निश्चय ही मैं इसकी उम्मीद करता हूं। लेकिन अब जबकि मैंने आपको अपना दुखड़ा सुना दिया है और आपने इतनी हमदर्दी के साथ मेरा हौसला बढ़ाया है, मैं पहले से बेहतर महसूस कर रहा हूं। इससे जाहिर होता है कि अभी भी दुनिया में कुछ इंसाफ है।"

हालांकि थोड़े ही दिन बाद वह फिर उदासी से भर उठा और अपना दुखड़ा सुनाने के लिए किसी दूसरे आदमी से मिला।

"मान्यवर!" उसने आंसू बहाते हुए सम्बोधित किया, "आप जानते हैं, जहां मैं रहता हूं वह सुअरबाड़े से भी बदतर जगह है। मेरा मालिक मुझे आदमी नहीं समझता। वह अपने कुत्ते को मुझसे दस हजार गुना बेहतर समझता है ...।"

"उसका सत्यानाश हो!" दूसरे व्यक्ति ने इतने जोर से गाली दी कि गुलाम भौचक्का रह गया। यह दूसरा आदमी मूर्ख था।

"मैं जिसमें रहता हूं, मान्यवर, वह टूटी-फूटी एक कमरे वाली झोपड़ी है, जिसमें सीलन, ठंडक और बेशुमार खटमल है। ज्यों ही मैं सोने जाता हूं वे काटने लगते हैं। वह जगह बदबू से भरी हुई है और उसमें एक भी खिड़की नहीं है ...।"

"क्या तुम अपने मालिक से एक खिड़की बनवाने के लिए कह सकते हो?"

"मैं कैसे कह सकता हूं?"

"ठीक है, मुझे दिखाओ वह जगह कैसी है।"

मूर्ख आदमी गुलाम के पीछे-पीछे उसकी झोपड़ी में गया और मिट्टी की दीवार पर चोट करने लगा।

"यह आप क्या कर रहे हैं, मान्यवर?"

गुलाम डर गया था।

"मैं तुम्हारे वास्ते एक खिड़की खोल रहा हूं।"

"यह ठीक नहीं होगा। मालिक मुझे मारेगा।"

"मारने दो।" मूर्ख आदमी दीवार पर चोट करता रहा।

"दौड़ो! एक डाकू घर तोड़ रहा है। जल्दी आओ नहीं तो वह दीवार ढहा देगा। ...।" चिल्लाते-सिसकते वह गुलाम पागलों की भांति जमीन पर लोटने लगा। गुलामों का एक पूरा दल ही उमड़ आया और उस मूर्ख को खदेड़ दिया। इस हल्ले-गुल्ले को सुनकर

(पेज 9 पर जारी)

तनख्वाह देने के लिए पैसों का रोना
विज्ञापनों पर खरबों-खरब रुपयों का खर्च

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। पूरे देश भर में सभी चीजों से सब्सिडी खत्म की जा रही है, तमाम जन सुविधाओं और कल्याणकारी योजनाओं को बन्द किया जा रहा है, साथ ही साथ सरकार लगातार इस बात का रोना रो रही है कि विनिवेश करना इसलिए जरूरी हो गया है क्योंकि सरकार के खजाने खाली हो चुके हैं। नब्बे के दशक के बाद से तेजी के साथ निजीकरण-ठेकाकरण किया जा रहा है। सरकार इस तरह भिखमंगी हो चुकी है कि जिन मज़दूरों-किसानों के दम पर यह पूरा देश घूमता है उनकी ही जेबों से पाकेटमारी-भूजाछोरी कर रही है, जिसकी वजह से एक तरफ तो महंगाई-बेकारी बढ़ रही है दूसरी तरफ आम आदमी की कमाई लगातार कम होती जा रही है।

तमाम सरकारी-अर्द्धसरकारी-निजी क्षेत्रों से सिर्फ मज़दूरों की इसलिए छंटनी हो रही है कि कर्मचारियों को वेतन देने के लिए इनके पास पैसा नहीं है। लेकिन दूसरी तरफ यही कम्पनियां अपने मालों को बेचने के लिए किस तरह खरबों-खरब रुपया प्रिंट मीडिया-इलेक्ट्रानिक मीडिया के ऊपर घोर अनुत्पादक खर्च कर रही हैं, इसको चन्द उदाहरणों से समझा जा सकता है।

सिर्फ भारत में 1998 में हिन्दुस्तान लीवर कम्पनी ने केवल इलेक्ट्रानिक मीडिया के ऊपर 654.5 करोड़ रुपया खर्च किया। समझा जा सकता है कि आज से पांच साल पहले जब सिर्फ एक कम्पनी साढ़े छह अरब रुपया केवल एक साल में विज्ञापन पर खर्च कर रही है तो जनता की गाढ़ी कमाई का कितना बड़ा अपव्यय हो रहा है। आइये भारत में विज्ञापन पर सर्वाधिक खर्च करने वाली दस कम्पनियों को देखा जाय जिससे कि हमलोगों को भी पता चले कि वाकई सच्चाई क्या है।(देखें तालिका)

प्रमुख दस कम्पनियों द्वारा 1998 में विज्ञापन पर व्यय

प्रिंट मीडिया		इलेक्ट्रानिक मीडिया	
कम्पनियों के नाम	व्यय (करोड़ रु.)	कम्पनियों के नाम	व्यय (करोड़ रु.)
(1) बी.पी.एल.	43.0	(1) हिंदुस्तान लीवर	654.4
(2) बजाज आटो	37.3	(2) नेस्ले	123.6
(3) आई.टी.सी.	32.0	(3) कोलगेट	92.6
(4) यू.टी.आई.	24.7	(4) कोकाकोला	76.6
(5) वीडियोकान	24.3	(5) पी एंड जी	70.8
(6) हिंदुस्तान लीवर	24.0	(6) पेप्सी	69.6
(7) अकाई	21.6	(7) डाबर	67.8
(8) मारुति	20.8	(8) ब्रुक ब्रांड	64.3
(9) फिलिप्स	19.8	(9) रेकिट एंड कोलेमन	60.2
(10) सैमसंग	17.3	(10) स्मिथक्लाइन बीचैम	52.8

1998 में ज्योति लेबोरेट्रीज ने सिर्फ उजाला नील पर 46.6 करोड़ रुपया टेलीविजन पर विज्ञापन के लिए खर्च किया।

ये तो है देश में सबसे अधिक विज्ञापन खर्च वाली मात्र दस कम्पनियों का आंकड़ा। देश में कुल विज्ञापन पर जो खर्च हो रहा है अगर उसे जोड़ा जाय तो देश के सकल घरेलू उत्पाद से कई गुना ज्यादा होगा। हम लोगों को जानकर यह आश्चर्य होगा कि एक कम्प्यूटर का साफ्टवेयर बेचने वाली अमेरिका की एक कम्पनी का जो विज्ञापन खर्च है वह भारत की कुल आमदनी से ज्यादा है। इसलिए समझा जा सकता है देश में पैसे की कमी नहीं है बल्कि कमी है सही उपयोग की। जिन कर्मचारियों-मज़दूरों के दम पर ये कम्पनियां चलती हैं उनको भरपेट भोजन के लिए तनख्वाह ये कम्पनियां नहीं दे पा रही हैं। दूसरी तरफ विज्ञापन पर खरबों रुपयों का खर्च कर रही हैं।

ये अनुत्पादक खर्च बंद होना ही चाहिए लेकिन यह अपने आप बंद नहीं होगा। क्योंकि ये कम्पनियां लोगों के प्रति जिम्मेदार नहीं हैं। हमारे आपके प्रति जिम्मेदार नहीं है। ये पैदावार इसलिए नहीं करती हैं कि आम जन की जिंदगी बेहतर हो, बल्कि उत्पादन ये इसलिए करती हैं कि इनको मुनाफा कमाना होता है। अत: मजबूत हाथों और बाजुओं वाले लोगों को एक ऐसी व्यवस्था बनानी ही होगी जो मुनाफे के लिए काम न करती हो, बल्कि आम आदमी की जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए काम करती हो।

अक्लमंद, मूर्ख और गुलाम

(पेज 8 का शेष)

जो सबसे आखिर में धीरे-धीरे बाहर आया वह मालिक था।

"एक डाकू हमारा घर गिरा देना चाहता था। मैंने सबसे पहले खतरे की सूचना दी, और हम सबने मिलकर उस मूर्ख को खदेड़ दिया।" गुलाम ने ससम्मान और विजय गर्व से कहा।

"तुम्हारा भला हो!" मालिक ने उसकी प्रशंसा की।

उस दिन हमदर्दी दिखाने कई लोग आये, जिनमें वह अक्लमंद आदमी भी था।

"मान्यवर, चूंकि मैंने अपने को काम लायक सिद्ध किया, इसलिए मालिक ने मेरी प्रशंसा की। आप सचमुच दूरदर्शी हैं, आपने उस दिन कहा था कि हालात सुधरेंगे", वह बहुत आशान्वित और खुश होकर बोला।

"यह सही है ...।" अक्लमंद आदमी ने जवाब दिया, और वह भी अपने पर खुश लग रहा था।

बिगुल पोस्टर श्रृंखला के तहत प्राप्त करें दो आकर्षक पोस्टर

कम्युनिस्ट घोषणापत्र की 150 वीं वर्षगांठ के अवसर पर

बिगुल पोस्टर - 1 (मूल्य -5 रु.)

महान पेरिस कम्यून की 128वीं जयन्ती (18 मार्च) के अवसर पर

बिगुल पोस्टर - 2 (मूल्य - 8 रु.)

प्राप्ति स्थान

जनचेतना

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020 फोन : 788932

मार्क्सवाद तथा सुधारवाद

वी.आई.लेनिन

अराजकतावादियों के विपरीत मार्क्सवादी, सुधारों के लिए संघर्ष को, यानी मेहनतकशों की दशा में ऐसे सुधारों के लिए संघर्ष को स्वीकार करते हैं, जो सत्तारुढ़ वर्ग की सत्ता को नष्ट न करते हों। परन्तु इसके साथ ही मार्क्सवादी उन सुधारवादियों के विरुद्ध सर्वाधिक संकल्पपूर्वक संघर्ष करते हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में मज़दूर वर्ग के प्रयासों तथा गतिविधियों को सुधारों तक सीमित करते हैं। सुधारवाद मज़दूरों के साथ बुर्जुआ धोखाधड़ी है, जो पृथक-पृथक सुधारों के बावजूद तब तक सदैव उजरती दास बने रहेंगे, जब तक पूंजी का प्रभुत्व विद्यमान है।

उदारतावादी बुर्जुआ एक हाथ से सुधार देते हैं और दूसरे हाथ से सदैव उन्हें छीन लेते हैं, उन्हें समेटकर शून्य बना डालते हैं, मज़दूरों को दास बनाने के लिए, उन्हें पृथक-पृथक ग्रुपों में विभक्त करने के लिए, मेहनतकशों की उजरती दासता बनाये रखने के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं। इस कारण सुधारवाद, उस समय भी, जब वह पूर्णत: निष्कपट होता है, व्यवहार में मज़दूरों को भ्रष्ट और कमजोर बनाने का बुर्जुआ हथियार बन जाता है। समस्त देशों का अनुभव बताता है कि सुधारवादियों पर विश्वास करने वाले मज़दूर सदैव बेवकूफ बन जाते हैं।

इसके विपरीत, यदि मज़दूर मार्क्स के सिद्धान्त को आत्मसात कर लेते हैं, यानी वे पूंजी के प्रभुत्व के बने रहते उजरती दासता को अपरिहार्यता को अनुभव कर लेते हैं, तो वे किसी भी बुर्जुआ सुधारों से अपने को बेवकूफ नहीं बनने देंगे। यह समझकर कि पूंजीवाद के बने रहते सुधार न तो स्थायी और न महत्वपूर्ण हो सकते हैं, मज़दूर बेहतर परिस्थितियों के लिए लड़ते हैं तथा उजरती दासता के विरुद्ध और डटकर संघर्ष जारी रखने के लिए बेहतर परिस्थितियों का उपयोग करते हैं। सुधारवादी छोटी-मोटी रियायतों से मज़दूरों में फूट डालने, उनकी आंखों में धूल झोंकने, वर्ग संघर्ष की ओर से उनका ध्यान हटाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु मज़दूर सुधारवाद की मिथ्यावादिता को अनुभव कर चुकने के कारण अपने वर्ग-संघर्ष का विकास तथा विस्तार करने के लिए सुधारों का उपयोग करते हैं।

सुधारवादियों का मज़दूरों पर प्रभाव जितना अधिक सशक्त होता है, मज़दूर उतने ही निर्बल होते हैं, बुर्जुआ वर्ग पर उनकी निर्भरता उतनी ही ज्यादा होती है, तरह-तरह के दांव पेंचों से इन सुधारों को शून्य में परिणत कर देना बुर्जुआ वर्ग के लिए उतना आसान होता है। मज़दूर आन्दोलन जितना अधिक स्वावलंबी तथा गहन होता है, उसके ध्येय जितने अधिक विस्तृत होते हैं, सुधारवादी संकीर्णता से वह जितना अधिक मुक्त होता है, मज़दूरों के लिए अलग-अलग सुधारों को सुदृढ़ बनाना तथा उनका उपयोग करना उतना ही आसान होता है।

सुधारवादी समस्त देशों में हैं, इसलिए कि बुर्जुआ वर्ग सर्वत्र मज़दूरों को इस या उस तरह भ्रष्ट करने, उन्हें ऐसे सन्तुष्ट दास बनाने का प्रयास करता है, जो दासता को मिटाने का विचार त्याग देते हैं। रूस में सुधारवादी विसर्जनवादी हैं, जो हमारे अतीत को ठुकराते हैं, ताकि मज़दूरों को नयी, खुली, कानूनी पार्टी के बारे में मीठी-मीठी लोरियां सुनाकर सुलाया जाये।...

...मार्क्सवादी अथक रूप से कार्य कर रहे हैं, सुधार हासिल करने, उनका उपयोग करने का एक भी "मौका" हाथ से नहीं जाने देते, प्रचार में, आंदोलन में, व्यापक आर्थिक कार्रवाइयों, आदि में सुधारवाद के दायरे के बाहर जाने के प्रत्येक पग की निन्दा नहीं, उसका समर्थन तथा उसे अध्यवसायपूर्वक विकसित करते हैं। परंतु मार्क्सवाद को तिलांजलि दे बैठे विसर्जनवादी मार्क्सवादी समष्टि के ठीक अस्तित्व पर प्रहार कर, मार्क्सवादी अनुशासन को नष्ट कर, सुधारवाद और उदारतावादी मज़दूर नीति का प्रचार कर मज़दूर आंदोलन को केवल विसंगठित कर रहे हैं।..

(संकलित रचनाएं खण्ड चार, पृ. 217-21)

हिन्दू फासिस्ट ताकतों को सबक सिखाना...

(पेज 1 का शेष)

उसने कहा कि 28 फरवरी को गोधरा काण्ड हुआ और अगले दिन पचास हिन्दू सड़कों पर निकल आये... गांव के गांव मुसलमानों से खाली करा दिये गये ... उन्हें राहत शिविरों में रहने को मजबूर कर दिया गया ... गुजरात में सफल परीक्षण किया गया है ... हिन्दू समाज में पहली बार इतने बड़े पैमाने पर जागृति आयी है। ...

नरेन्द्र मोदी हों या अशोक सिंघल, ये महज दो नाम नहीं हैं जो फासिस्ट जुनून में अन्धे हो गये हैं। ये समाज में गहराई तक जड़ें जमा चुकी उन काली ताकतों के सबसे गन्दे चेहरे हैं जिनका दिशानिर्देश राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) नाम का बहुरुपिया संगठन करता है। 1980 के दशक में देश की पूंजीवादी व्यवस्था के संकटों से खाद-पानी पाकर और क्रान्तिकारी आन्दोलनों की गिरावट की हालत से पुष्ट होकर इसकी राजनीतिक शाखा भारतीय जनता पार्टी आज कांग्रेस के बाद देश-विदेश के पूंजीपति वर्गों की सबसे चहेती पार्टी बन चुकी है। इस राजनीतिक शाखा के पास लोगों को भरमाने के लिए वाजपेयी जैसा 'उदारवादी' मुखौटा भी है और आडवाणी जैसा अग्निमुख है। पुरानी भारतीय जनसंघ की नयी अवतार भाजपा चुनावी राजनीति में इतनी माहिर हो चुकी है कि वह जरूरत पड़ने पर गांधी के हत्यारों का स्तुतिगान करते-करते गांधी की वारिस भी बन सकती है। फिर भी सिद्धान्तवादी पार्टी का ढिंढोरा पीटती रह सकती है। तहलका काण्ड व कफनखसोटी से लेकर पेट्रोल पम्प घोटाले में सिर से पांव तक भ्रष्टाचार में डूबी रह सकती है और उघार हो जाने पर सत्ता में होने की बुराइयों से ग्रसित होने का पाप स्वीकार भी कर सकती है।

संघ परिवार की इस राजनीतिक शाखा का मौजूदा तेवर उसके भविष्य की रणनीति को उजागर कर रहा है। वाजपेयी का मुखौटा पीछे हो रहा है और आडवाणी का मुख सामने आ रहा है। उ. प्र. में बाबरी मस्जिद विध्वंस के नायक पुराने बजरंग दली विनय कटियार को भाजपा की कमान सौंपने को अशोक सिंघल के बयान से जोड़कर देखा जाये तो भविष्य की तस्वीर साफ नज़र आयेगी।

देश की राजनीति ही नहीं समाज के अन्य क्षेत्रों में हिन्दू फासिस्ट ताकतों की दखल खतरनाक गहराइयों तक पहुंच चुकी है। शिक्षा-संस्कृति के क्षेत्र में पैठ बनाकर आम हिन्दू मानस का घनघोर साम्प्रदायीकरण करके संघ परिवार अपने हिन्दू राष्ट्र के एजेण्डे को अमल में लाने की कोशिशों में तेजी से आगे बढ़ता दिख रहा है। धर्मभीरु व अतार्किक मध्यमवर्गीय आबादी के बीच संघ परिवार की निरंकुश फासिस्ट सोच अपनी जड़ें काफी गहरी जमा चुकी हैं। उधर मज़दूर आन्दोलन की आज की कमजोरी का फायदा उठाकर छंटनी-तालाबन्दी के मारे हताश-निराश मज़दूरों के बीच भी इसकी पहुंच-पैठ बढ़ रही है। यानी, हिन्दू फासिस्ट ताकतें सत्ता में रहें न रहें उनकी मौजूदगी एक कष्टदायी हृदय कैंसर के रूप में भारतीय समाज को प्रभावित करती रहेगी।

ऐसे में गुजरात में नरेन्द्र मोदी की गौरव यात्रा को चुनावी समीकरणों के जरिये नाथने का सपना देखना खतरनाक होगा। पुराने संघी काडर शंकर सिंह बघेला को नरेन्द्र मोदी के खूनी अभियान की कमान सौंपकर कांग्रेस गुजरात नरसंहार को चुनावी लाभ में बदलने का ख्वाब देख रही है। कांग्रेस यह भी जानती है कि मुस्लिम मतदाताओं के जख्मों पर मरहम लगाकर उनका वोट तो हासिल किया जा सकता है लेकिन सत्ता नहीं पायी जा सकती। इसलिए वघेला भाटी जी महाराज के शरण में भी जा रहे हैं और सोनिया गांधी गणेश पूजा करके फोटू छपवा रही हैं। कांग्रेस के साम्प्रदायिकता विरोधी रुख से राहत की सांस लेने वाले प्रगतिशील जनों को अपनी आंखों से पर्दे हटा लेने की जरूरत है। हिन्दू फासिस्ट ताकतों को चुनावी संघर्ष में मोर्चा खोलकर परास्त करने का भ्रम इन ताकतों को मजबूत ही बनायेगा। जैसा कि पहले भी साबित हो चुका है।

इसलिए, आज हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के खिलाफ हमें संघर्ष के जमीनी मोर्चों को खोलना होगा। हमें समाज की उस ताकत को मजबूत बनाना होगा जिसने इतिहास में फासीवादी ताकतों को धूल चटायी है। यानी मेहनतकश वर्ग की उस बिखरी-भटकी हुई ताकत को बटोरना होगा जो भविष्य में देश के भीतर हिन्दू फासीवादी ताकतों से सड़कों पर मोर्चा लेगा। हमें अपनी उम्मीदें इसी मेहनतकश वर्ग के जमीनी संघर्ष क्षमता पर टिकानी होगी।

इसीलिए, आज मेहनतकश अवाम के आगे बढ़े हुए क्रान्तिकारी हिस्सों को और समाज की तमाम प्रगतिशील-धर्मनिरपेक्ष ताकतों को मेहनतकश अवाम के बीच साम्प्रदायिक फासीवादी प्रचार आन्दोलन में जुट जाना होगा। कहने की जरूरत नहीं कि यह काम मेहनतकश अवाम के पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के साथ मिलकर ही किया जाना है, इससे अलग-थलग रहकर नहीं, क्योंकि यह फासीवाद संकटग्रस्त पूंजीवाद-साम्राज्यवाद की ही जहरीली औलाद है। इस जमीनी प्रचार-आन्दोलन के अलावा और किसी रास्ते से फासीवादियों के रौरवनर्क से बचने की उम्मीद करना खुद को आत्मघाती भुलावे में रखना है।

पूरे देश में गुजरात को दुहराने की शैतानी हुंकार भरने वालों को आने वाले दिनों में मेहनतकश अवाम इतिहास का सबक जरूर सिखायेगा, लेकिन इसके लिए उसकी ताकत को जगाना होगा। केवल इसी रास्ते पर चलकर आज की बेबसी को दूर किया जा सकता है।

मालिकों के हाथ में चाबुक...

(पेज 6 का शेष)

विरोध के कारण सरकार इसे पूरी तरह लागू नहीं कर पायी थी। उसने किश्तों में ट्रेड यूनियन ऐक्ट,1926 व ठेका अधिनियम, 1970 में संशोधन कर दिया था। अब दूसरे श्रम आयोग ने बड़े ही शातिराना तरीके से बदलावों की योजना पेश की है।

मुनाफाखोरों की इस बेमिसाल ताबेदारी को देखते हुए यह तय है कि श्रम आयोग की इन सिफारिशों को कानून बन जाने में ज्यादा देर नहीं लगने वाली है। रिपोर्ट जारी करते समय दिये गये श्रम मंत्री व प्रधानमंत्री के बयान भी इसे साफ कर देते हैं। मज़दूरों पर "श्रम सुधार" के नाम पर हथौड़ा चलने की घड़ी अब बिल्कुल करीब आ पहुँची है।

भूमण्डलीकरण के साथ "समायोजित" नहीं, पूंजी के राज को उखाड़ फेंकने की तैयारी तैयारी तेज करो

श्रम आयोग ने श्रमिकों को नसीहत दी है कि उन्हें हर कीमत पर भूमण्डलीकरण के साथ "समायोजित" हो जाना चाहिए। ऐ पूंजीपतियों के वफादार कुत्तो! मज़दूर वर्ग को तुम्हारी बिन मांगी नसीहतों की जरूरत नहीं है। तुम्हारा काम मालिकों के सामने दुम हिलाना है, मज़दूरों पर भौंकना है, मौका मिलने पर काट खाना है, तुम अपना काम करते रहो। तुम्हारे सुझाव को सरकार में बैठे तुम्हारे हमजाद भाई अमल में लाने की तैयारी करें! तुमने अपना काम कर लिया है। अब मज़दूर अपना रास्ता खुद ढूंढ लेंगे।

पिछले ग्यारह वर्षों में भूमण्डलीकरण के नाम पर निजीकरण-उदारीकरण का जो पाटा मज़दूर वर्ग पर चला है उसने उसे सिखा दिया है कि अब बचने के कई रास्ते नहीं बचे हैं। मज़दूर हितों की नुमाइन्दगी के नाम पर नकली वामपंथियों सहित पूंजीपतियों की दलाल तमाम ट्रेडयूनियनों की गद्दारियां और कुछ दे-दिला देने में भी उनका हिजड़ापन मज़दूरों के सामने बेनकाब हो चुका है। हालात के थपेड़े उन्हें यह सिखाते जा रहे हैं कि पूंजी और मुनाफे के राज के बने रहते अब उनका जिन्दा रहना भी मुश्किल है। सारे भ्रम टूट रहे हैं। पिछले ग्यारह सालों में मिली अनेक छोटी-बड़ी हारें भी मज़दूरों को काफी कुछ सिखा रही हैं। ऐसे में मज़दूर वर्ग के सामने धीरे-धीरे यह रास्ता अपने आप नज़र आने लगा है कि उन्हें पूंजी के राज को खत्म करना ही होगा और इसके मलबे पर अपना राज बनाने की तैयारी करनी ही होगी।

इतिहास गवाह है कि मज़दूर वर्ग अपने संघर्षों के लिए कानूनों का मोहताज कभी नहीं रहा है। चाहे 'काम के घण्टे आठ करो' की ऐतिहासिक लड़ाई रही हो या रूस-चीन जैसे देशों में पूंजी की सत्ता को उखाड़ फेंककर मेहनतकशों की सत्ता कायम करने की महान संघर्ष गाथाएँ रही हों, मज़दूर वर्ग के पास सबसे बड़ा हथियार उसकी अपनी क्रान्तिकारी एकजुटता रही है। इसलिए श्रम कानूनों को बदलने में आज अगर पूंजीपति वर्ग कामयाब भी हो जाता है तो इसमें मन छोटा करने की कोई बात नहीं है।

मज़दूर वर्ग को फिर से उठ खड़े होना होगा। अपनी फिलहाली हारों से पैदा हुई निराशा से बाहर निकलकर नये सिरे से अपनी क्रान्तिकारी कतारें सजानी होंगी। अपनी अगुवाई के लिए अपनी क्रान्तिकारी पार्टी को नये सिरे से गढ़ना होगा। इसकी जिम्मेदारी यूं तो समूचे मज़दूर वर्ग को अपने कन्धों पर उठानी है पर उसके बीच के जो अधिक जागरूक, समझदार और बहादुर लोग हैं उन्हें अपने कन्धों पर ज़्यादा बोझ उठाना होगा।

इसका मतलब यह नहीं कि श्रम आयोग की सिफारिशों को कानून बनने से रोकने के लिए अपनी मौजूदा ताकतभर वर्ग जितना कर सकता है उसे नहीं करना चाहिए। फौरी लड़ाइयों को दरकिनार कर आगे की लड़ाईयां नहीं जीती जा सकती। इसलिए, मेहनतकशों की बस्तियों में, कारखाना इलाकों में श्रम आयोग की श्रम विरोधी घोर पूंजीपरस्त सिफारिशों के खिलाफ ताकतभर भरपूर प्रचार अभियान चलाया जाना चाहिए और पूरी ताकत लगाकर विरोध को संगठित रूप देना चाहिए।

नयी सदी में नये वेग से, परिवर्तन का ज्वार उठेगा!

नये इंकलाब के चिराग रौशन करने होंगे

(पेज 12 का शेष)

खत्म नहीं हुई थीं। आज़ादी की असलियत तो 1960 के दशक में ही बेपर्दा हो चुकी थी, जब "नयी" व्यवस्था से नाउम्मीदी व्यापक जनविस्फोटों के रूप में फूट पड़ी थी। लेकिन यह भी सही है कि यह आजादी टाटाओं-बिड़लाओं और देश-विदेश के खून चूसने वाली जमातों की है और जनतंत्र मुफ्तखोरों, कफनखसोटों का है – इस सच्चाई का अहसास पिछले दस-बारह वर्षों के भीतर जितने नंगे रूप में लोगों को हुआ है वैसा पहले नहीं हुआ था।

इसके साथ ही उस समय और आज का सबसे बड़ा फर्क, जो आम आदमी को बेबस-निरुपाय बना रहा है, यह है कि राजनीतिक-सामाजिक पैमाने पर आज जैसी विकल्पहीनता और सामाजिक भविष्य शून्यता पहले नहीं थीं। इसी व्यवस्था के दायरे के भीतर कुछ सुधारवादी कार्यक्रम लेकर लोगों के बीच जाने वाली सामाजिक-राजनीतिक शक्तियां आज जैसी नपुंसक उस समय नहीं थीं। यह सुधारवाद एक भ्रम ही था, लेकिन आज तो यह भ्रम भी नहीं है। उस समय क्रान्तिकारी ताकतों के नेतृत्व में संघर्ष भी जारी था। भले ही यह संघर्ष व्यवस्था को बदलने की मंजिल तक नहीं पहुंच सका, लेकिन संघर्ष का जारी रहना ही अपने आप में उम्मीद की चिरागों को रौशन करता रहता है। पर क्रान्तिकारी ताकतों के बिखराव और टूट-फूट का जो सिलसिला 1980 के दशक से शुरू हुआ वह आज तक रुक नहीं सका है। एक तरफ सुधारवादी-अर्थवादी मजदूर आन्दोलन आज शासक वर्गों के नये हमलों के सामने अपनी नपुंसकता पूरी तरह उजागर कर चुका है तो दूसरी तरफ क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन एक व्यापक सामाजिक आन्दोलन बनना तो दूर अभी नये सिरे से खड़े होने के लिए जूझ रहा है। ऐसे में जो व्यापक सामाजिक नाउम्मीदी और राजनीतिक विकल्पहीनता की हालत है उसमें व्यवस्था से अकेले-अकेले जूझ रहे लोगों में से कुछ लोग अन्दर से पूरी तरह टूट जा रहे हैं।

आत्महत्याओं का यह सिलसिला देश की आदमखोर व्यवस्था और लोभ-लालच पर टिकी समूची पूंजीवादी सभ्यता को तो आइना दिखा ही रहा है, साथ ही क्रान्तिकारी ताकतों के सामने भी यह एक चुनौती बनकर खड़ा है। क्योंकि नाउम्मीदी और विकल्पहीनता के अन्धेरे से लोगों को बाहर निकालने की जिम्मेदारी उन्हीं पर है।

आत्महत्याओं के ये सिलसिले समाज के भीतर घनी हो रही जिस बेचैनी को प्रकट कर रहे हैं उसे आज गहराई से महसूस करने की जरूरत है। देश के मेहनतकश अवाम के अगुवा क्रान्तिकारी हिस्सों को हताशा-निराशा के गहन अन्धेरे में डूबे लोगों के सामने नयी उम्मीद के चिराग रौशन करने की जरूरत है। नये सपनों को जिन्दा करने की जरूरत है क्योंकि इन्सानियत को बेहतर बनाने की नयी परियोजनाओं पर अमल की कोशिशें जब सचमुच एक नये सिलसिले के रूप में उभरकर लोगों के सामने आयेंगी, केवल तभी सर्वेश-चन्दन-राजेश जैसे तमाम लोगों की घुटन को आत्महन्ता कोशिशों के रूप में बदलने से रोका जा सकता है। केवल तभी इस घुटन व बेचैनी को बेहतर भविष्य बनाने की कोशिशों में बदला जा सकता है।

• मोहन

कहानी

कोलुशा

● मक्सिम गोर्की

क़ब्रिस्तान का वह कोना, जहां भिखारी दफ़नाए जाते हैं। पत्तों से छितरे, बारिश से बहे और आंधियों से जर्जर क़ब्रों के दूहों के बीच, दो मरियल-से बर्च वृक्षों के जालीदार साये में, जिंघम के फटे-पुराने कपड़े पहने और सिर पर काली शाल डाले एक स्त्री एक क़ब्र के पास बैठी थी।

सफेद पड़ चले बालों की एक लट उसके मुरझाए हुए गाल के ऊपर झूल रही थी, उसके महीन होंठ कसकर भिंचे थे और उनके छोर उसके मुंह पर उदास रेखाएं खींचते नीचे की ओर झुके थे, और उसकी आंखों की पलकों में भी एक ऐसा झुकाव मौजूद था जो अधिक रोने और काटे न कटने वाली लम्बी रातों में जागने से पैदा हो जाता है।

वह बिना हिले-डुले बैठी थी – उस समय, जबकि मैं कुछ दूर खड़ा उसे देख रहा था, – न ही उसने उस समय कुछ हरकत की जब मैं और अधिक निकट खिसक आया। उसने केवल अपनी बड़ी-बड़ी चमकविहीन आंखों को उठाकर मेरी आंखों में देखा और फिर उन्हें नीचे गिरा लिया। उत्सुकता, परेशानी या अन्य कोई भाव, जो कि मुझे निकट पहुंचता देख उसमें पैदा हो सकता था, नाम

मात्र के लिए भी उसने प्रकट नहीं किया।

मैंने अभिवादन में एकाध शब्द कहा और पूछा कि यहां कौन सोया है।

"मेरा बेटा," उसने भावशून्य उदासीनता से जवाब दिया।

"बड़ा था?"

"बारह बरस का।"

"कब मरा?"

"चार साल पहले।"

उसने एक गहरी सांस ली और बाहर छिटक आई लट को फिर बालों के नीचे खोंस लिया। दिन गरम था। सूरज बेरहमी के साथ मुर्दों के इस नगर पर आग बरसा रहा था। क़ब्रों पर उगी इक्की-दुक्की घास तपन और धूल से पीली पड़ गई थी। और धूल-धूसरित रूखे-सूखे पेड़, जो सलीबों के बीच उदास भाव से खड़े थे, इस हद तक निश्चल थे मानो वे भी मुर्दा बन गए हों।

"वह कैसे मरा?" लड़के की क़ब्र की ओर गरदन हिलाते हुए मैंने पूछा।

"घोड़ों से कुचलकर," उसने संक्षेप में जवाब दिया और अपना झुर्रियां-पड़ा

हाथ फैलाकर लड़के की क़ब्र सहलाने लगी।

"यह दुर्घटना कैसे घटी?"

मैं जानता था कि इस तरह खोदबीन करना शालीनता के खिलाफ है, लेकिन इस स्त्री की निस्संगता ने गहरे कौतुक और चिढ़ का भाव मेरे हृदय में जगा दिया था। कुछ ऐसी समझ में न आने वाली सनक ने मुझे घेरा कि मैं उसकी आंखों में आंसू देखने के लिए ललक उठा। उसकी उदासीनता में कुछ था, जो अप्राकृतिक था, और साथ ही उसमें बनावट का भी कोई चिह्न नहीं दिखाई देता था।

मेरा सवाल सुनकर उसने एक बार फिर अपनी आंखें उठाकर मेरी आंखों में देखा। और जब वह सिर से पांव तक मुझे अपनी नज़रों से परख चुकी तो उसने एक हल्की-सी सांस ली और अटूट उदासी में डूबी आवाज़ में अपनी कहानी सुनानी शुरू की।

"घटना इस प्रकार घटी। उसका पिता गबन के अपराध में डेढ़ साल के लिए जेल में बन्द हो गया। इस काल में हमने अपनी सारी जमा पूंजी खा डाली। यों हमारी वह जमा पूंजी कुछ अधिक थी भी नहीं। अपने आदमी के जेल से छूटने से पहले ईंधन की जगह मैं हार्स-रेडिश के डंठल जलाती थी। जान-पहचान के एक माली ने खराब हुए हार्स-रेडिश का गाड़ी भर बोझ मेरे घर भिजवा दिया था। मैंने उसे सुखा लिया और सूखी गोबर-लीद के साथ मिलाकर उसे जलाने लगी। उससे भयानक धुंआ निकलता और खाने का जायक़ा खराब हो जाता। कोलुशा स्कूल जाता था। वह बहुत ही तेज़ और किफ़ायतशार लड़का था। जब वह स्कूल से घर लौटता तो हमेशा एकाध कुन्दा या लकड़ियां – जो रास्ते में पड़ी मिलतीं – उठा लाता। वसन्त के दिन थे तब। बर्फ़ पिघल रही थी। और कोलुशा के पास कपड़े के जूतों के सिवा पांवों में पहनने के लिए और कुछ नहीं था। जब वह उन्हें उतारता तो उसके पांव लाल रंग की भांति लाल निकलते। तभी उसके पिता को उन्होंने जेल से छोड़ा और गाड़ी में बैठाकर उसे घर लाए। जेल में उसे लकवा मार गया था। वह वहां पड़ा मेरी ओर देखता रहा। उसके चेहरे पर एक कुटिल-सी मुस्कान खेल रही थी। मैं भी उसकी ओर देख रही थी और मन ही मन सोच रही थी – 'तुमने ही हमारा यह हाल किया है, – और तुम्हारा यह दोज़ख़ मैं अब कहां से भरूंगी? एक ही काम अब मैं तुम्हारे साथ कर सकती हूं। वह यह कि तुम्हें उठाकर किसी जोहड़ में पटक दूं।' लेकिन कोलुशा ने जब उसे देखा तो चीख उठा, – उसका चेहरा धुली हुई चादर की भांति सफेद पड़ गया और उसके गालों पर से आंसू ढुरकने लगे। 'यह इन्हें क्या हो गया है, मां?' उसने पूछा। 'यह अपने दिन पूरे कर चुका', मैंने कहा। और इसके बाद हालत बद से बदतर होती गई। काम करते-करते मेरे हाथ टूट जाते, लेकिन पूरा सिर मारने पर भी बीस कोपेक से ज्यादा न मिलते, सो भी तब, जब भाग्य से दिन अच्छे होते। मौत से भी बुरी हालत थी, अकसर मन में आता कि अपने इस जीवन का अन्त कर दूं। एक बार, जब हालत एकदम असह्य हो उठी, तो मैंने कहा – 'मैं तो तंग आ गई इस मनहूस जीवन से। अच्छा हो अगर मैं मर जाऊं – या फिर तुम दोनों में से कोई एक खत्म हो जाए!' – यह कोलुशा और उसके पिता की तरफ़ इशारा था। उसका पिता केवल गरदन हिलाकर रह गया, मानो कह रहा हो – 'झिड़कती क्यों हो? ज़रा धीरज रखो, मेरे दिन वैसे ही क़रीब आ लगे हैं।' लेकिन कोलुशा ने देर तक मेरी ओर देखा, इसके बाद वह मुड़ा और घर से बाहर चला गया। उसके जाते ही अपने शब्दों पर मुझे बड़ा पछतावा हुआ। लेकिन अब पछताने से क्या होता था? तीर हाथ से निकल चुका था। एक घंटा भी न बीता होगा कि एक पुलिसमैन गाड़ी में बैठा हुआ आया। 'क्या तुम्हीं शिशेनीना साहिबा हो?' उसने कहा। मेरा हृदय बैठने लगा। 'तुम्हें अस्पताल में बुलाया है', वह बोला –'तुम्हारा लड़का सौदागर आनोखिन के घोड़ों से कुचल गया है।' गाड़ी में बैठ मैं सीधे अस्पताल के लिए चल दी। ऐसा मालूम होता था जैसे गाड़ी की गद्दी पर किसी ने गर्म कोयले बिछा दिए हों। और मैं रह-रहकर अपने को कोंच रही थी – 'अभागी औरत, तूने यह क्या किया?'

"आख़िर हम अस्पताल पहुंचे। कोलुशा पलंग पर पड़ा पट्टियों का बंडल मालूम होता था। वह मेरी ओर मुसकराया, – और उसके गालों पर आंसू ढुरक आए ... फिर फुसफुसाकर बोला – 'मुझे माफ करना, मां। पैसा पुलिसमैन के पास है।' 'पैसा... कैसा पैसा? यह तुम क्या कह रहे हो?' मैंने पूछा। 'वही, जो लोगों ने मुझे सड़क पर दिया था और आनोखिन ने भी', उसने कहा। 'किसलिए?' मैंने पूछा। 'इसलिए', उसने कहा और एक हल्की-सी कराह उसके मुंह से निकल गई। उसकी आंखें फटकर खूब बड़ी हो गईं, – कटोरा जितनी बड़ी। 'कोलुशा', मैंने कहा – 'यह कैसे हुआ? क्या तुम घोड़ों को आता हुआ नहीं देख सके?' और तब वह बोला, बहुत ही साफ और सीधे-सीधे, – 'मैंने उन्हें देखा था, मां, लेकिन मैं जान-बूझकर रास्ते में से नहीं हटा। मैंने सोचा कि अगर मैं कुचला गया तो लोग मुझे पैसा देंगे। और उन्होंने दिया।' ठीक यही शब्द उसने कहे। और तब मेरी आंखें खुलीं और मैं समझी कि उसने – मेरे फ़रिश्ते ने – क्या कुछ कर डाला है। लेकिन मौक़ा चूक गया था। अगली सुबह वह मर गया। उसका मस्तिष्क अन्त तक साफ़ था और वह बराबर कहता रहा – 'दद्दा के लिए यह खरीदना, वह खरीदना और अपने लिए भी कुछ ले लेना।' मानो धन का अम्बार लगा हो। वस्तुतः वे कुल सैतालीस रूबल थे। मैं सौदागर आनोखिन के पास पहुंची, लेकिन उसने मुझे केवल पांच रूबल दिए, सो भी भुनभुनाते हुए। कहने लगा – 'लड़का खुद जान-बूझकर घोड़ों के नीचे आ गया। पूरा बाज़ार इसका साक्षी है। सो तुम क्यों रोज़ आ-आकर मेरी जान खाती हो? मैं कुछ नहीं दूंगा।' मैं फिर कभी उसके पास नहीं गई। इस प्रकार वह घटना घटी, – समझे युवक!"

उसने बोलना बन्द कर दिया और पहले की भांति अब फिर सर्द तथा निस्संग हो गई।

क़ब्रिस्तान शान्त और वीरान था। सलीब, मरियल-से पेड़, मिट्टी के दूह और क़ब्र के पास इस शोकपूर्ण मुद्रा में बैठी यह मनोविकारशून्य स्त्री – इन सब चीज़ों ने मुझे मृत्यु और मानवीय दुख के बारे में सोचने के लिए बाध्य कर दिया।

लेकिन आकाश में बादलों का एक धब्बा तक नहीं था और वह धरती पर झुलसा देने वाली आग बरसा रहा था।

मैंने अपनी जेब से कुछ सिक्के निकाले और उन्हें इस स्त्री की ओर बढ़ा दिया जो, दुर्भाग्य की मारी, अभी भी जी रही थी।

उसने सिर हिलाया और विचित्र धीमेपन के साथ बोली –

"कष्ट न करो, युवक। आज के लिए मेरे पास काफ़ी है। आगे के लिए भी मुझे अधिक नहीं चाहिए। मैं एकदम अकेली हूं। इस दुनिया में एकदम अकेली!" उसने एक गहरी सांस ली और

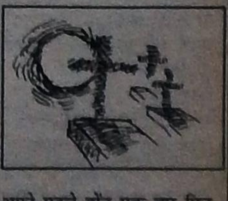

अपने पतले होंठ एक बार फिर उसी शोक से बल-खाई रेखा में भींच लिए।

(1895)

पंजीयन संख्या - 71980/99 डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2000

इराक पर हमले के लिए क्यों बेताब है अमेरिका?

खुद हथियारों के जखीरे पर बैठे अमेरिकी हुक्मरान एक बार फिर इराक के तथाकथित सामूहिक विध्वंस के हथियारों के खतरे से दुनिया को आज़ाद कराने की मुहिम पर निकल पड़े हैं। इस मुहिम में अपने सामराजी बिरादरों को साथ लेने के लिए जार्ज बुश एण्ड कम्पनी ने एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया है, लेकिन इस बार बात बनती नजर नहीं आ रही है। अमेरिकी पिछलग्गू ब्रिटेन को छोड़कर यूरोपीय संघ का कोई भी देश इस बार इराक पर हमले में साथ खड़े होने को तैयार नहीं है। 11 सितम्बर की घटना के बाद दुनिया को आंतकवाद से आजाद करने के नाम पर अफगानिस्तान पर हमले के लिए अमेरिकी हुक्मरानों को अपने सामराजी बिरादरों सहित पूरी दुनिया के पूंजीवादी लुटेरों का समर्थन मिला था लेकिन यह टिप्पणी लिखे जाने तक वही समर्थन दुबारा हासिल करने के लिए वे तरस गये हैं। यहां तक कि अरब जगत की उसके पिट्ठू शेखशाहियां भी इस बार हिचक रही हैं। फिर भी ऐसा लग रहा है कि इस बार वह बुरी तरह अलगाव में पड़कर भी अमेरिकी हुक्मरान इराक पर हमला करने के अपने मंसूबों से पीछे नहीं हटेंगे।

इराक पर हमले के लिए अमेरिकी हुक्मरानों की इस बेताबी के पीछे यह कारण तो कतई नहीं है कि सद्दाम हुसैन सामूहिक विनाश के हथियारों के जखीरे पर बैठा हुआ है। असल कारण इराक का वह विशाल तेल भण्डार है जिस पर सद्दाम हुसैन की सत्ता के रहते कब्जा जमाना अमेरिकी हुक्मरानों के लिए किसी सूरत में मुमकिन नहीं है। कुछ अर्सा पहले अमेरिकी उपराष्ट्रपति डिक चेनी ने कैलिफोर्निया में इस मंशा का खुलासा इन शब्दों में किया: "वह दुनिया के तेल के 10 फीसदी जखीरे पर बैठा हुआ है। वह उससे बहुत भारी सम्पदा पैदा कर रहा है। और अगर उसे खुला छोड़ दिया जाता है तो वह दिन दूर नहीं ज़ब वह नाभिकीय हथियार बटोर लेगा।"

सद्दाम का तख्ता पलट देने के लिए पश्चिमी तेल कम्पनियों का अपने हुक्मरानों पर काफी दबाव है। इनमें एक्सोन कम्पनी सबसे आगे है। अगर सद्दाम का तख्ता पलट दिया जाता है तो इराकी तेल भण्डारों तक अमेरिकी तेल कम्पनियों की पहुंच आसान बन जायेगी। इसके अलावा यह भी होगा कि सऊदी तेल भण्डारों और सऊदी शाही के भविष्य पर अमेरिकी निर्भरता कम हो जायेगी।

मध्य एशिया में अब तक हुए तमाम युद्धों और विवादों की जड़ में हमेशा ही, तेल रहा है। अफ़गानिस्तान पर अमेरिकी हमले के पीछे भी असल मंशा तालिबान और ओसामा बिन लादेन या उसके अल कायदा नेटवर्क को तबाह करने की नहीं बल्कि भूमध्यसागर के अनछुए तेल भण्डारों तक पहुंच बनाने और अफगानिस्तान को एक सैन्य अड्डे के रूप में विकसित कर समूचे दक्षिण एशिया में सैन्य दबदवा कायम करने की रही है। इराक पर अमेरिकी हमले की ताजा बेताबी के पीछे तेल पर कब्ज़ा जमाने के साथ-साथ पश्चिम एशिया में शक्ति सन्तुलन को अपने पक्ष में बनाये रखना है। अमेरिका और उसके लाडले इस्रायल को यह वास्तविक डर है कि इराक के नाभिकीय हथियार अर्जित कर लेने के बाद पश्चिम एशिया का मौजूदा शक्ति-सन्तुलन गड़बड़ा जायेगा। इसके अलावा कई अमेरिकी कम्पनियों का दिवाला पिटने से असाध्य संकटों से घिरी अर्थव्यवस्था को जो ताजा झटके लगे हैं, उससे दुनिया का एकछत्र चौधरी होने की उसकी स्थिति भी डांवाडोल हो रही है। ऐसे में इराक पर हमला करके अमेरिका अपने सामराजी बिरादारों पर अपना सैन्य दबदबा भी बनाये रखना चहता है।

पश्चिम एशिया हमेशा से साम्राज्यवादी दुनिया के अन्तरविरोधों की गांठ बना रहा है। इराक पर अमेरिकी हमले को फ्रांस, जर्मनी व रूस के समर्थन न देने के पीछे इराकी जनता की मुसीबतों के प्रति उनकी हमदर्दी कतई नहीं है। इराक के तेल भण्डारों पर इनकी भी ललचाई निगाहें टिकी हुई हैं। साथ ही पश्चिम एशिया में अकेले अमेरिका का राजनीतिक-सामरिक दबदबा भी उन्हें फूटी आंखों नहीं सुहाता। इसीलिए वे संयुक्त राष्ट्र संघ से अमेरिका को इजाजत लेने की रणनीति पर चल रहे हैं। जर्मनी ने धमकी दी है कि अगर अमेरिका ने इकतरफा हमला किया तो वह कुवैत से अपनी फौजें वापस बुला लेगा। फ्रांस भी इकतरफा अमेरिकी हमले के बजाय वैकल्पिक उपायों का सुझाव दे रहा है। रूस ने भी धमकी दी है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में अगर इराक पर अमेरिकी हमले का प्रस्ताव आया तो वह वीटो का इस्तेमाल करेगा।

उधर अरब जगत के अमेरिकी पिट्ठू भी इस बार उसके साथ आसानी से नहीं खड़े होते दिख रहे हैं। उन्हें कई तरह का डर सता रहा है। वे इस आशंका से डरे हुए हैं कि इराक पर हमले में साथ देने से उनकी जनता बगावत कर सकती है। उनकी सत्ताएं डांवाडोल हो सकती हैं। इसी आशंका को भांपते हुए अरब लीग ने कहा है कि "इराक पर हमला नर्क के दरवाजों को खोल देगा।"

अमेरिका और उसके बिरादरों-सहयोगियों के बीच के अन्तरविरोधों का लाभ उठाते हुए इराक ने भी अपनी कूटनीतिक गतिविधियां तेज़ कर दी हैं। उसने शर्त लगायी है कि वह संयुक्त राष्ट्र संघ के हथियार निरीक्षकों को अपने देश दुबारा आने तभी देगा जब उस पर लगे आर्थिक प्रतिबन्ध हटा लिये जायें। मालूम हो कि इराक ने हथियार निरीक्षकों के पहले दल को यह कहकर लौटा दिया था कि वे निरीक्षण के नाम पर जासूसी करते हैं। इराक का यह आरोप आगे चलकर सही भी प्रमाणित हुआ जब खुद दल के एक संदस्य ने स्वीकार किया कि उससे जासूसी भी करायी जाती है।

इराक पर हमले के लिए बाहरी समर्थन के लिए मारे-मारे फिर रहे अमेरिकी हुक्मरानों को भीतर से भी समर्थन नहीं मिल पा रहा है। खुद अमेरिकी हुक्मरान आपस में बंटे हुए हैं। विदेश मंत्री कालेन पावेल की राय भी इकतरफा हमले के पक्ष में नहीं है। विपक्षी डेमोक्रेट सीनेटर ही नहीं खुद रिपब्लिकन सीनेटर भी बुश के साथ नहीं खड़े हैं। उधर मीडिया में लगातार सद्दाम हुसैन को शैतान के रूप में चित्रित करने के बावजूद अमेरिकी जनता यह पचा नहीं पा रही है कि पिछले खाड़ी युद्ध और आर्थिक प्रतिबन्धों से जर्जर-तबाह इराक दुनिया की शान्ति के लिये इतना बड़ा खतरा बन गया है कि उस पर युद्ध थोप दिया जाये। अफगानिस्तान पर युद्ध की कीमत आज भी चुका रही अमेरिकी जनता इतनी जल्दी एक और युद्ध के लिए कतई तैयार नहीं है। अमेरिका के दस प्रमुख शहरों में युद्ध विरोधी प्रदर्शनों की तैयारियां चल रही हैं। ब्रिटेन के भीतर का हाल भी यही है। प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर का अमेरिकी पिछलग्गू बनकर इराक पर हमले का समर्थन करना ब्रिटिश जनता कतई पसन्द नहीं कर रही है।

बाहर और भीतर के इन दबावों के बावजूद अपने सामराजी मंसूबों को पूरा करने के लिए अगर अमेरिका इराक पर हमला करता है तो यह खुद अमेरिकी हुक्मरानों के लिए विनाशकारी साबित हो सकता है। इसके पूरे आसार हैं। हमला होने पर अरब जनता ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया की शान्तिकामी साम्राज्यवाद विरोधी जनता इराकी जनता के साथ इस बार ज्यादा मजबूती से खड़ी होगी। भारत के मेहनतकश अवाम को भी युद्ध छिड़ने पर इराकी जनता के साथ पूरी एकजुटता दिखानी होगी। इसके लिए अभी से तैयार रहना होगा।

● योगेश पन्त (15 सितम्बर, 2002)

नाउम्मीदी के अंधेरे में नए इंकलाब के चिराग रौशन करने होंगे

स्वतंत्रता दिवस पर एक नौजवान का आत्मदाह

ठीक पन्द्रह अगस्त को जब देश का प्रधानमंत्री लाल किले की प्राचीर से सातवें आसमान को छू लेने वाली बातें बघार रहा था, उसी समय पटना का इक्कीस वर्षीय चन्दन अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा रहा था। चन्दन भट्टाचार्य की कराहें आज़ादी के सरकारी धूम धड़ाके में दब कर रह गयी। चन्दन काफी समय से अपनी दुख भरी कहानी तमाम लोगों को कह रहा था और साथ ही उसने अपना फैसला भी बता दिया था कि वह इस स्वतंत्रता दिवस को अपने आप को जला लेगा।

चन्दन के पिता को पिछले सात साल से वेतन नहीं मिला था। ग़रीबी के इन दिनों में उसकी मां बेहतर इलाज के अभाव में मर गई। खुद उसको बी.ए. की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ी थी। इन हालात में हताश होकर उसने आत्मदाह करना तय कर लिया।

चंदन के पिता की तरह बिहार में विभिन्न सरकारी बोर्डों और निगमों के करीब 32 हजार कर्मचारियों को वेतन नहीं मिल रहा है। चंदन की तरह दो और लोगों ने पन्द्रह अगस्त को ही आत्महत्या करना तय किया था, लेकिन उन्हें बचा लिया गया।

बिहार के चन्दन के आत्मदाह के ठीक चार दिन बाद उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के हिंडन नदी पुल के खम्भे पर फांसी लगाकर राजेश नाम के एक और नौजवान की आत्महत्या की खबर आयी। राजेश बेरोजगारी से परेशान था। चन्दन की तरह राजेश भी उस बेरहम व्यवस्था से अकेले-अकेले जूझते-जूझते हताशा और बेबसी और निपट अकेलेपन के उस आखिरी मुकाम पर पहुंच गया था जहां से जीने की कोई राह नहीं सूझती। ज़िन्दगी और मौत का फर्क मिट गया सा महसूस होने लगता है।

... और ये छिटपुट घटनाएं नहीं हैं। जबसे हुक्मरानों ने मुल्क को दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चलाने के ऐलान के साथ अर्थव्यवस्था में "सुधार" का सिलसिला शुरू किया है तभी से आत्महत्याओं का यह त्रासद सिलसिला भी तेज हुआ है। सर्वेश नाम के उस मज़दूर की त्रासदी लोग भूले नहीं होंगे जिसने पांच वर्ष पहले मई दिवस पर संसद के सामने आत्मदाह कर लिया था। आन्ध्र प्रदेश के कपास पैदा करने वाले किसानों और बुनकरों की सामूहिक आत्महत्याओं की खबरें भी अभी जेहन में ताजा ही होंगी। नयी औद्योगिक नीति से औद्योगिक श्मशान बन चुके शहर कानपुर के छंटनीशुदा मज़दूरों की आत्महत्याएं भी उनके दिलों को लगातार झकझोरती रहती हैं जिन्होंने इन्सान की तरह धड़कना अभी बन्द नहीं किया है।

... और यह सिलसिला शायद तब तक चलता रहे जब तक भविष्य से नाउम्मीद और बेरहम व्यवस्था के सामने बेबस लोगों को रोशनी की कोई नयी लकीर न दिखने लगे। ऐसा नहीं है कि देश के आम लोगों की ज़िन्दगी नयी आर्थिक नीतियां लागू होने के पहले खुशगवार थीं। 1947 की जिस आज़ादी की शान में हर साल लाल किले की प्राचीर से कसीदे पढ़े जाते हैं वह आज़ादी आम लोगों के लिए झूठी है – यह सच्चाई लोगों ने काफी पहले ही महसूस कर लिया था। देशी हुक्मरानों द्वारा राजकाज सम्हालने के बाद भी आम लोगों की ज़िन्दगी की मुसीबतें

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ। संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।